शरद जोशी

जन्म : 21 मई 1931, उज्जैन (म० प्र०)

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥

●

सत्त्वगुण से जो भाव उत्पन्न होते हैं और
तमोगुण तथा रजोगुण से जो भाव उत्पन्न
होते हैं, उन सबको तू मेरे से ही होने वाले
हैं, ऐसा जान; परन्तु वास्तव में उनमे
मैं और मुझ मे वे नही हैं।

श्रीकृष्ण-कथा पर आधारित उपन्यास ३

रामकुमार भ्रमर

कालिन्दी के किनारे

'कालिन्दी के किनारे' से 'कर्मयोग' तक

प्रस्तुत खंड मे भगवान श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था के साथ-साथ उस समय घटी अनेक घटनाओं का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था और गोकुल में रहने के समय की बहुतेक घटनाएं अलौकिकता से पूर्ण हैं और उनके लौकिक तर्क ढूंढ़ने लगभग असम्भव हैं, पर जिस तरह श्रद्धालुओं ने उस काल की अनेक लौकिक घटनाओं को भी अलौकिक बना डाला है अथवा भक्तिरस से सराबोर होकर अनेक कवियों ने श्रीकृष्ण के सहज मानवीय कर्मों को भी असहज बना दिया है, प्रतिबिम्बों और रूपकों के घटाटोप में जकड़कर असामान्यता और जटिलता प्रदान कर दी है, उससे मैं सहसा सहमत नही हो पाया हूं। जब-जब, जहां-जहां भी मुझे श्रीकृष्ण-कथा से जुड़े प्रामाणिक ग्रन्थों का अध्ययन करने पर उनके वैज्ञानिक और मानवीय पक्ष मिले हैं, मैंने उन्हें ही आधार मानकर, उन घटनाओं का वर्णन किया है। हो सकता है कि बहुतेक श्रद्धालु अलौकिक में ही सुन्दर मानते हैं, पर मुझे लगता है कि उनकी लौकिकता में ही श्रीकृष्ण का वह सम्पूर्ण सुन्दर निहित है, जिसे उन्होंने मनुष्य मात्र के प्रति गीता का उद्‌बोधन करके देने का यत्न किया। "अहम् ब्रह्मास्मि" से पूर्ण उनके दार्शनिक पक्ष को विवेचित करने के लिए उन घटनाओं का लौकिक वर्णन करना ही मुझे उपयुक्त लगा है।

इस खंड में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चर्चा का विषय है—राधा, जिनका वर्णन विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों, विशेषकर, कवित्वपूर्ण संवेदना की कृतियों मे मिलता है। श्रीकृष्ण के प्रति श्रद्धा और उनके 'सुन्दर' का यह वर्णन राधा के बिना पूर्ण होना लगभग असम्भव हो चुका है। यहां तक कि लगता है, जैसे राधा के बिना कृष्ण ही अधूरे हो जाते हैं। सहज सम्बोधन में भी श्रीकृष्ण से पूर्व राधा का नाम आता है, यथा 'राधाकृष्ण' सुनना और सुनाना सुखद और प्रेम के सम्पूर्ण का आनन्द देता है। यदि—जैसा कि बहुतेक विद्वानों का कहना है कि राधा ऐतिहासिक चरित्र नही हैं, केवल श्रीकृष्ण के प्रति भक्तिपूर्ण प्रेम की कवित्वमय कल्पना-मूर्ति हैं, सही भी है'

शरद जोशी
जन्म : 21

तब भी मैं उन्हे चरित्र के रूप मे ही स्वीकारता हूं और यथार्थ रूप में वर्णित करता हूं। मुझे लगता है कि भगवान् श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण की कल्पना राधा के बिना नही हो सकती। यह भी कि राधा पात्र न होकर मन की एक विशिष्ट स्थिति हैं। *मन, जिसमे श्रद्धा, समर्पण, भक्ति और आनन्द है।* उनसे परे सम्पूर्णता मे 'ईश्वरत्व' का बोध कर पाना असम्भव है। अतः 'कालिन्दी के किनारे' मे ही नही अन्य खंडो में भी राधा को पाठक भिन्न उपस्थित पायेंगे। हो सकता है कि तार्किकता और यथार्थवाद के पोषकों अथवा प्रेमियो के लिए मेरा यह प्रयत्न लेखकीय दुश्चेष्टा लगे, किन्तु मुझे लेखक के नाते ही नही, व्यक्ति के नाते भी यह सब लिखना सुखकर लगा है।

श्रीकृष्ण की बाल लीलाओ मे विशेषकर उनकी शरारतें और रास-रग आदि क्रीड़ाए जन-जन मे व्याप्त और लोकप्रिय हैं। जितना मैंने पढ़ा और जाना है, उसके अनुसार मुझे लगा है जैसे श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था और किशोर आयु से जुडी ऐसी सभी घटनाएं उनकी अति सहजता और सर्वप्रियता ही नही, उनके व्यक्तित्व का विशेष अंश हैं। यथार्थ को अत्यन्त सहज ढंग से देखने, भोगने और जीवन का आनन्द लेने की ये सहज मानवीय क्रियाए हैं। उन्हे देखने मे हम किस दृष्टि से काम लेते हैं और किस मानसिकता से सोचते हैं, यह विचारणीय है, श्रीकृष्ण की लीलाओ की सहजता विचारणीय नही। श्रीकृष्ण के इस जीवन-अंश को देखने के लिए मनुष्य के पास निर्मल मन और दृष्टि चाहिए, दोषपूर्ण विचार और विकृत मानसिकता से पूर्ण दृष्टि उनके सत्य को न तो देख सकती है, न समझने का सामर्थ्य रखती है। प्रकृति-पुरुष के गहन दर्शन मे ही श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओ का रहस्य छिपा हुआ है। इसके बाद आता है, उनका वह कर्म-पुरुष, जो गोकुल से बाहर निकलकर यथार्थ के सघर्ष-यज्ञ मे उभरा है। 'कालिन्दी के किनारे' मे उनके जीवन का मात्र वही अश है, जो किशोरावस्था तक सरल प्रकृति-पुरुष रहा है और 'कर्मयज्ञ' की ओर बढ़ता है।

५३/१४, रामजस रोड, करौल बाग
नई दिल्ली-११०००५

—रामकुमार भ्रमर

कालिन्दी के किनारे

जैसे-जैसे रथ राजधानी के पास पहुंच रहा है, वैसे-वैसे अस्ति और प्राप्ति की आंखों में कुछ गड़ने लगा है। पहले रेत की कुछ किरकिरी जैसा और फिर समूचा ही रेगिस्तान।···कैसी विचित्र स्थिति है ! तरल आंसू भी रेगिस्तान की तपन और झुलसन का अहसास देने लगते है। कितने-कितने विचित्र और दोहरे अर्थों से भरे होते है ये आंसू। कभी हर्षामृत बने हुए, कभी लावे का उफान लिए हुए।

अस्ति और प्राप्ति—दोनों ही बहनों की आंखों में अनेक बार आए हैं ये आंसू। उस समय भी आये थे, जब इसी मगध देश की राजधानी से मथुराधिपति कंस के साथ विदा होते समय पिता जरासन्ध से विलग हुई थीं; किन्तु तब अलग अर्थ थे इन आंसुओं के। पतिगृह जाने का उल्लास भी भरा हुआ था इनमे और पितागृह से विदाई का सताप भी।

पर आज ?···आज ये आंसू सिर्फ पीड़ा, प्रतिशोध और घृणामिश्रित आक्रोश मे डूबे हुए ! वर्षाहीन मरुस्थल की तरह तप्त। अंगारों की तरह झुलसाते हुए। पति-विछोह के शोक से संतप्त और राजगौरव की गरिमा के धूलि-धूसरित हो जाने की वेदना से छनकते हुए।

बरसों पूर्व जब इसी राजमार्ग से निकलकर मथुराधिपति कंस का महारानियों के रूप मे दोनों बहिनें मथुरा की ओर चली थीं, तब इसी रथ की गड़गड़ाहटें पागलों की झंकार जैसी अनुभव हुई थीं और आज जब वैधव्य का उजाड़ बटोरे हुए पितागृह को लौट रही हैं तब लगता है कि रथ उन्हें बिठाले हुए नहीं, प्रतिक्षण उन्हें रौंदते हुए आगे बढ़ रहा

शरद जोशी

जन्म : 21 मई 1931

है ! अपने ही भीतर लहूलुहान होती हुई अस्ति और प्राप्ति ! अपन ही मर्मान्ति मे लगे, कभी न भर सकने वाले बदले के घाव की सड़न अनुभव करती हुई !

जानती है कि पिता की महाशक्ति का एक थप्पड़ भी नही झेल सकेंगे कृष्ण-बलराम ! पर उनके नाश से भी अस्ति और प्राप्ति को सन्तोष नही मिलेगा। उस अपमान का हिसाब नही चुकाया जा सकेगा जो मथुरा की महारानियो ने झेला है ! उस सिन्दूर की लालिमा उन दोनों के रक्त से भी नही लौट सकेगी, जिसे सजाये हुए महाराज कंस की महारानिया गौरव गरिमा से भरी-भरी फूलो लदी बेल की तरह सदा भारी रहती थी।

सोचती हैं तो विश्वास नही होता। दृश्य रह-रहकर दृष्टि के सामने धूमकेतु के अशुभ दर्शन की तरह कौंध उठता है। विशालदेह और दुर्जय शक्ति से सम्पन्न अपने पति को उन चपल बालकों द्वारा इस तरह हत होते देखा था उन्होंने जैसे किसी कीट-पतंग को मसला जाते देख रही हों। विस्मय से पलकें जहा की तहां थमी रह गयी थी।

सभा मे भगदड़ मच गयी थी। जिसका जहां सींग समाया, भाग निकले। वे, जिनकी शक्ति के स्तम्भो पर महाबली कंस ने अपने विशाल गणसंघ का आतंक बिखरा रखा था। वे, जो राजा के दृष्टिपथ पर उजियाले के सुझाव बिखराये रहते थे। वे, जिनकी क्षमता और योग्यता से मथुराधिपति कंस ने वृष्णि, अन्धक और यादवों पर अपना दबदबा बनाये रखा था, उन्ही को कायरों, मतिभ्रमो की तरह भागते-बिखरते-बदहवास होकर गिरते-लड़खड़ाते देखा था दोनों महारानियो ने। और फिर देखा था सभास्थल के बीचोंबीच लहू से सराबोर पड़े अपने वज्र-यष्टि पति कंस को। दोनों रानियों के रोम-रोम मे फुरहरियां भर गयी थी।

वे गोप बालक ? अविश्वसनीय ! पर सत्य सामने था। सेविका ने कहा था, "देवि !···चलें !···यह सब असह्य है !" किस तरह उठी, किस तरह अपनी मूर्च्छा संभाले रही—इस पल याद नही आता। बस, इतना याद है कि आते ही राजभवन मे मृतप्राय-सी गिर गयी थी।

धीमे-धीमे एक-एक समाचार आता गया था···उन गोप बालकों ने महा-राज उग्रसेन को कारागृह से मुक्त कर दिया है···देवकी और वसुदेव को भी।···और यह भी कि वे बालक देवकी और वसुदेव की ही सन्तति हैं !

कालगति ! मन ने एक उच्छ्वास भरकर सोचा था। याद आया कि किन-किन उपायों से कंस ने उन गोप-बालकों को समाप्त करने की चेष्टा नहीं की थी ? वत्सासुर, केशी, पूतना, चाणूर कितने ही नाम और कितनों की ही समाप्ति के समाचार ! तब भी निश्चित थीं अस्ति और प्राप्ति। महाशक्तिशाली कंस को समाप्त करना उन बालकों के लिए असम्भव है ! पर यही असंभव विद्युत् गति से ही सम्भव हो गया था।

देर बाद सुधि आयी थी उन्हें। अस्ति ने पलकें खोलीं तो पाया था कि सेविकाओं से भरा रहनेवाला रनिवास रिक्त पड़ा है। कौंधकर पुकारा था, "कोई है ?" और विश्रांति सामने आ खड़ी हुई थी। आंखों में छलछलाते आंसू, चेहरा झुका हुआ, "आज्ञा, महारानी ?"

'महारानी ?' लगा था जैसे किसी ने छाती पर घूंसा चला दिया है। अंतड़ियों तक को तोड़ता हुआ। अपने ही भीतर, अपने ही टूटने का स्वर साफ-साफ सुना था उन्होंने। पर शक्ति बटोरी—ऐसे, जैसे, अपना ही छार-छार हो चुका कांच जैसा मन बटोरा हो। कहा था "जल !···जल दो, विश्रांति !" विश्रांति आज्ञापालन में तत्पर हुई।

अस्ति ने छोटी बहिन को देखा···सुधि में होकर भी अब तक बे-सुध-सी थी। बाल बिखरे हुए। दृष्टि भयजनित पीड़ा से भरी हुई। लगता था कि कुछ ही पलों में दमकते रहनेवाले चेहरे को अमावस ने ग्रस लिया है। वैधव्य की अमावस ! पराधीनता की पीड़ा से पीली हो चुकी दुर्बलिता !

"प्राप्ति !" अस्ति ने कहा था। लगा था कि अपनी ओर से बहुत जोर से बोली है वह, किन्तु स्वर इतना अशक्त हो गया है जैसे स्वयं की आवाज को ही किसी गहरे कुएं से ऊपर आते सुना हो उसने।

प्राप्ति ने पलकें उठायीं···पुतलियां स्पन्दनहीन थीं। इस तरह - मुर्दी

जैसे किसी यंत्र का अंग चला हो। भावशून्य और जड़। उत्तर नहीं दिया। सिर्फ आंखें टिकाए रखी बड़ी बहिन पर।

"सब समाप्त हुआ!" अस्ति ने उसी तरह डूबी और घुघलायी आवाज में कहा था, "राजगौरव, गरिमा, महत्त्व और सम्मान···सब समाप्त हुआ!"

कुछ पल सन्नाटा रहा। लगा कि अपने ही शब्द कक्ष में गूंज-गूंज-कर लौट आये हैं। प्राप्ति ने एकदम कुछ नहीं कहा। विश्रांति जल ले आयी थी। अस्ति ने कुछ घूंट पिये। जलपात्र वापस सेविका की ओर बढ़ा दिया।

प्राप्ति अनायास ही बोली थी, "मैं जानती थी बहिन! यह सब समाप्त होना है!"

अस्ति विस्मय और अविश्वास से भरी स्तब्ध देखती रहीं छोटी बहिन को। क्या ठीक ही सुना था उसने? प्राप्ति ने वही कहा है जो उसने सुना है?·· प्राप्ति ने पुनः कह दिया था, "हां, यह सब होना था, आज नहीं तो किसी और दिन! पर यह होना ही था!" और फिर एक गहरा श्वास बिखर गया था उसका, धुंध की तरह।

▭▭

प्राप्ति के ये शब्द?···होंठ खुले रह गये थे अस्ति के। नहीं-नहीं, असंभव! प्राप्ति पति-वध को देखकर मस्तिष्क का सन्तुलन खो बैठी है। अस्ति को यही लगा था। किन्तु प्राप्ति कुछ थमकर आगे भी बोल गयी थी, "सत्तामोह ने मथुराधिपति को असन्तुलित कर दिया था बहिन! कितनी बार कहा था मैंने, पूज्य उग्रसेन को कारावास से मुक्ति दो! वसुदेव और देवकी के अबोध बालकों का संहार मत करो! पर कालगति ने उन्हें कभी शुभाशुभ का विचार नहीं करने दिया! और आज वह सब···" सहसा प्राप्ति बिलख पड़ी। ऐसे जैसे किसी पत्थर से झरना बरस पड़ा हो।

अस्ति को अच्छा नहीं लगा। कैसे अच्छा लगता? पति कंस ने क्या शुभ किया, क्या अशुभ? किस क्षण पुण्य संजोया, किस पल पाप सहेजा?

यह सब पत्नी के लिए विचारणीय नहीं। हो भी, तो कम-से-कम इस क्षण नहीं। यह क्षण तो पति के वध को लेकर प्रतिशोध के ज्वालामुखी में झुलसने का है। यह क्षण केवल उस ज्वाला को निरन्तर प्रज्वलित रखने का है। पर जानती थी अस्ति, प्राप्ति के विचारों और उसके विचारों में कभी समानता नहीं हुई। इस समय भी वही स्थिति। विषय को वहीं तोड़ दिया था उसने। पूछा, "अब? अब क्या करना चाहोगी तुम? महान् कंस की विधवा के नाते क्या कर्त्तव्य होना चाहिए हमारा? जिस कुल ने हमें वैधव्य दिया है, उसके आश्रय में रहने से अधिक अपमानजनक मुझे तो कुछ नहीं लगता!"

प्राप्ति कुछ सहज हुई···पर अपनी बौद्धिकता से पूर्ववत् घिरी हुई। यह स्वभाव था उसका। फिर कब बाध्यता बन गई थी···यह भी याद नहीं। बस, इतना याद है कि न कभी किसी विषय पर त्वरित निर्णय लेने की उसे आदत थी, न उस क्षण कर सकी।

अस्ति ने इस बीच अपने-आप को कुछ सहेज-संजो लिया था। थकी-सी चाल में चल पड़ी। जाते-जाते कह गयी थी बहिन से, "तुमने जो भी विचार किया हो या करो, पर मैं निर्णय ले चुकी हू···पितृगृह लौट जाऊंगी।"

प्राप्ति ने उत्तर नहीं दिया था, केवल सुना। रिक्त दृष्टि से देखती रही। यह रिक्तता ही उत्तर था उसका। प्राप्ति हो या अस्ति—यहां रहे या वहां। क्या अन्तर पड़ने वाला था?

ଓଓ

और मथुरा के राजभवन में रहते हुए भी इस रिक्तता से कहां मुक्ति मिली थी प्राप्ति को? महाराज थे, किन्तु राज-काज के नाम पर प्रतिदिन पारिवारिक षड्यंत्रों मे व्यस्त। कभी आशंका रहती थी कि गणसंघ के किसी सामन्त के यहां षड्यंत्र पक रहा है और कभी लगता था जैसे राजनीति केवल अन्धकार से पूर्ण एक लम्बी अविराम रात्रि बन गयी है!

शूरसेन जनपद के किसी-न-किसी भाग से कोई-न-कोई अशुभ समा-

धार मिल जाया करता था। आज किसी ने कोई टिप्पणी की, आज किसी ने महाराज उग्रसेन के बन्दीगृह मे होने की चर्चा चलायी और कल किसी को देवकी-वसुदेव की सन्ततियों को महाराज के द्वारा क्रूरता-पूर्वक मार डालने की स्मृति आयी। किसी ग्राम मे सभा हुई, किसी मे चर्चा और किसी मे किसी राजसेवक ने उपस्थिति दी। आये दिन अशाति से भरी घटनाएं। हर पल केवल अशाति और अनिश्चितता का घिनौना डर बना हुआ!

इसी तरह चल रहा था मथुरा का जीवन और इससे कही बदतर और बेचैनी से भरा जीवन था अस्ति-प्राप्ति का। कंस उन्हें बाहों मे कसते, पर लगता कि वे अजब-सी अलस भाव मे डूबी हुई केवल जड शाखाएं हैं। न सिहरन होती थी उस जकड़ से, न ही मन उद्वेलन लेता! कितनी-कितनी रातो सोते मे जाग नहीं जाया करते थे कस? बैठ जाते और फिर सन्नाटे को निगलते हुए कई पहर बैठे रहते या कि सन्नाटे ही उन्हें कई पहरों तक निगले रहते। प्राप्ति कारण पूछती। कस का उत्तर केवल बहलाव होता, कोई झूठ। पर प्राप्ति जानती थी, कारण।

कारण है उनका अपना आतम। भयग्रस्त आतम। उग्रसेन, देवकी, वसुदेव के अतिरिक्त भी अनेक चेहरे हैं जो उन्हें रातोरात सोने नहीं देते। और भय काटने के लिए वह हर सुबह किसी-न-किसी कूट-जाल को बुनते हैं। कूटजाल यानी षड्यंत्र। छल और असत्य का घटाटोप। अन्धकार एक और सतह लेता है। ऐसे ही अन्धकार सतह-दर-सतह महाराज पर हावी होते गए थे और इन अंधेरों मे ही असंख्य, अज्ञात षड्यंत्र पलते-पनपते रहे।

किन्तु वे मात्र षड्यंत्र तो नहीं थे? प्राप्ति को उस समय भी लगता था, आज भी लग रहा है। जो कुछ हो रहा था—उस समय अज्ञात था—कंस वध के बाद ज्ञात हुआ, वह सब षड्यन्त्रों के उत्तर मे केवल रक्षा थी।

देवकी हो या वसुदेव, वसुहोम हो या कटक, चंचला हो या अनुराधा, बाबा नंद रहे हों अथवा यशोदा, सब केवल बचाव कर रहे थे। स्वर्गवासी कंस से बचाव। इस बचाव के उत्तर में भी उन्हें उसी कूटनीति

का जाल रचना पड़ा था, जिसका आरम्भ महाराजा कंस ने स्वयं किया था।

प्राप्ति तब भी जानती थी, आज भी यही अनुभव करती है। मन होता है कि पति की हत्या के दोष मे उन सभी को दोषी मान लें, किन्तु वैसा हो नही पाता। मन ही कमजोर हो गया है या पतिनिष्ठा नही थी उनके मन में? पूछती है अपने-आप से। उत्तर नहीं मिलता। जो उत्तर मिलता है, वह होता है केवल सत्य। एक बार उस सबको पुन: जानना चाहती है जो घटा था मथुरा मे। प्राप्ति-अस्ति से कंस के विवाहोपरांत तुरंत घटा था। हालांकि उस समय जानने को नही मिला था, तब वह सब रहस्य था, सबसे पहला रहस्य था, कारावास से निकाले गये कृष्ण की कथा।

अनचाहे ही दौड़ते रथ के साथ वही सब याद आने लगा है प्राप्ति को।

□□

कारागृह का उपाधीक्षक विचित्र-सी सहम से भरा हुआ था। वसुहोम ने पहली दृष्टि में ही समझ लिया था। लगा था कि कुछ कहना भी चाहता है, पर होंठ साथ नहीं दे रहे हैं। होंठ या मन?

मन वसुहोम का भी हुआ कि पूछ लें, क्या बात है। पर चुप रहे। अपनी ओर से रुचि नहीं जतलायेंगे। ऐसा करके कंटक को अधिक उलझन में डाल देंगे। हो सकता है कि वह पूर्वापेक्षा अधिक सहम-संकोच से भर उठे। चुपचाप खड़े देखते रहे।

कंटक हौले-हौले रथ की ओर बढ़ रहा था। चेहरा कुम्हलाया हुआ। आंखें चोरभाव से भटकती हुई, अस्थिर।

वसुहोम ने पास ही खड़ी अनुराधा की ओर देखा। जैसे जानने की चेष्टा की हो। क्या वह भी यही कुछ सोच रही है, जो वसुहोम सोच रहे हैं? या वसुहोम ने समझा है? अनु की दृष्टि ने भी यही कुछ कहा। इस बीच कंटक सामने आ खड़ा हुआ। कारागृह से जाने के पूर्व एक औपचारिकता पूरी करने आया था वह। सूचना देगा। वसुहोम अधि-

शरद जोशी
जन्म : २१ मई १९

-कारी है।

"महोदय !" कंटक ने जैसे साहस जुटाया। बोला, "सेनापति का सन्देश आया है कि तुरंत उनसे भेंट करूं। आपकी आज्ञा है ?"

"अवश्य !" वसुहोम ने कहा। पर कंटक इस समय भी उन्हें देख रहा था, क्या अब भी कुछ कहने के लिए शेष रहा है ? उसकी दृष्टि से यही लगा था उन्हे। पर पूछा फिर भी नही।

कंटक ही बोल गया था, "मेरा अनुमान है कि केशी को कहीं से कुछ सूचना अवश्य मिली होगी।" उसका स्वर आशंका और चिन्ता में डूबा हुआ था। वसुहोम की आंखों में रात उभर आयी। मथुराधिपति के आने के पूर्व जिस तरह उन्होंने देवकी सुत को कारागार से बाहर निकाला था, उसी को लेकर कंटक कुछ कहना चाहता था।

वसुहोम कुछ क्षण कंटक को देखते रहे। ज्ञात था कि कंटक सब कुछ जानता है, पर यह भी समझ रहे थे कि कंटक कुछ कहने-बतलाने वाला नही है। मनुष्य-मन के भीतर किस गति और वेग से क्या कुछ घट रहा है, वसुहोम पहचानते थे। कंटक कभी वसुहोम और वसुदेव पर ही दृष्टि रखने के लिए कारावास में पहुंचाया गया था। अपना गुप्तचर-धर्म पूरा भी कर रहा था वह। देवकी की हर संतान के जन्मते ही वसुहोम की सूचना के पूर्व कंस और केशी तक सूचनाएं पहुंचाता रहा था वह। किन्तु आठवी सन्तति के जन्म पूर्व घटनाओ ने कुछ ऐसा बदलाव लिया कि कंटक और उसकी पत्नी, दोनों ही हृदय-परिवर्तन के लिए बाध्य हो गये। वसुहोम के लिए यह बदलाव चमत्कार की तरह घटा था, और इसी चमत्कार ने देवकीसुत को सुरक्षित गोकुल तक पहुंचाने की राह दी।

और सब कुछ सही तरह हो जाने के बाद सहसा केशी का बुलावा आ पहुंचा था कंटक के लिए। कंटक उसी बुलावे पर जा रहा था।

वसुहोम की आंखों के सामने दुष्ट स्वभाव केशी का चेहरा उभर आया। क्रूर, कठोर और हिंस्रता की सीमा तक पशु केशी ! फिर लगा जैसे कंटक और उसकी पत्नी के अतिरिक्त भी कारागार में कोई था जो सूचनाएं देता रहा। कौन हो सकता है ?

एक-एक कर प्रहरियों के चेहरे वसुहोम की दृष्टि के सामने आने

लगे। किसी एक चेहरे की तलाश में मस्तिष्क का मथते हुए। कौन हो सकता है? पर आवश्यक तो नहीं कि केशी के बुलावे का वही अर्थ हो जो कंटक या वसुहोम सोच रहे हैं? कोई अन्य कारण भी हो सकता है। उस पल मन को धैर्य बंधाया। कहा, "जानता हूं कि किस चिन्ता ने तुम्हें व्यग्र किया है मित्र। पर आवश्यक नहीं कि तुम्हारी आशंका सही ही हो। सेनापति किसी अन्य कारणवश भी तुम्हें स्मरण कर सकते हैं।"

कंटक ने सुना। उत्तर नहीं दिया। गहरा श्वास छोड़ा और रथ की ओर मुड़ गया। पल-भर बाद वह रथारूढ़ होकर कारागृह से बाहर निकल गया। वसुहोम और अनुराधा देर तक खड़े यूं ही के भाव से उस ओर देखते रहे, जिधर से कंटक रथ सहित लुप्त हो चुका था।

▭▭

कंटक के कानों में इस समय भी वसुहोम के शब्द गूंज रहे हैं, "आवश्यक नहीं कि तुम्हारी आशंका सही ही हो।" लगा जैसे इन शब्दों ने उसे केवल शक्ति ही नहीं दी है, साहस की चेतना भी भरी है शरीर में। इसके बावजूद मन रह-रहकर अकुला उठता है। इस अकुलाहट के भीतर से एक प्रश्न उठता है—इसके अतिरिक्त हो भी क्या सकता है कारण? कंटक एक दायित्व-निर्वाह के लिए ही कारावास-सेवा में पहुंचाया गया था, और उससे उसी दायित्व को लेकर पूछताछ की जा सकती है। इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

"बहुत कुछ हो सकता है।" मन ने कुलाच भरकर उत्तर खोजा था। "बहुत कुछ। तुम्हें सेवा से अलग कहीं अन्यत्र भेजा जा सकता है। किसी और दायित्व निर्वाह के लिए। कोई और काम सौंपा जा सकता है। केशी अपने किसी निजी षड्यंत्र में भी जोड़ सकते हैं तुम्हें। अनेक काम हैं।"

कंटक का साहस अधिक दृढ़ हुआ। रथ तीव्र गति से बढ़ा जा रहा था। बीच-बीच में अवरोध आ जाते। रथ की गति धीमी करनी पड़ती। कंटक विचारों से परे होकर दायें-बायें देखने लगता, मार्ग-अवरोध के कारण। पर कारण देखकर पुनः अपने विचारों से जुट जाता। नगर

शरद जोशी

जन्म : 21 मई 1931

१६ : कालिन्दी के किनारे

और मुख्य मार्गों पर जहां-तहां महाराज कंस के विवाहोत्सव की तैयारियां हो रही थी । वाद्यों-वन्दनवारों के अतिरिक्त साधारण जन को भी आदेश दिये गये थे कि अपने-अपने घरों की सजावट करें । मथुराधिपति कंस, महाशक्तिसम्पन्न सम्राट् जरासन्ध के जामाता होने जा रहे थे । मथुरा का गौरव । इस गौरव-समारोह को दीप पर्व की तरह धूम-धड़ाके से मनाया जाना था ।

सजावट की यह व्यवस्था ही अनेक मार्गों पर अवरोध बनी हुई थी । नर-नारी, राजसेवक और सेविकाएं उत्साहपूर्वक तैयारियों में व्यस्त दीखते थे । कंटक ने अनेक को देखा । जिस गति और उत्साह को दृष्टि देखती है, वह मानसिक नहीं है—केवल राजभय के कारण है ! इस राज-रोप में मृत्युभय की कालिमा छिपी है । इसी कालिमा से भयातुर नगर वासी यान्त्रिक भाव से वह सब किये जा रहे हैं, जो उनसे करने को कहा गया है ।

विभिन्न स्थानों पर गति को संयत और तीव्र करता सारथी रथ को केशी के निवास तक ले पहुंचा । कंटक ने रथ से उतरने के पूर्व समूची आत्मशक्ति जुटाकर आगत क्षणों के लिए अपने-आप को तैयार किया, फिर सयत चाल मे सेनापति के कक्ष की ओर बढ़े । प्रहरियो को सूचना दी गयी, "सेनापति तक समाचार पहुचाओ, उपाधीक्षक आये है ।" वायु-गति से प्रहरी भीतर समाचार ले गया । पल-भर बाद लौटकर खबर दी, 'वह आप ही की प्रतीक्षा कर रहे है, श्रीमान्" कटक तीव्र गति से केशी के भेंट-कक्ष मे प्रवेश कर गया ।

▭▭

सेनापति खड़े थे । स्वस्थ, गठीला, शक्तिशाली शरीर था उनका । दृष्टि में चालाकी और धूर्तता दीखती थी । किसी को देखते तो लगता कि उसके अन्तर तक समाकर सत्य की सतह तक जा पहुंचना चाहते है । कंटक स्वयं को तैयार कर आया था । केशी की यह वेधक दृष्टि उसकी जानी-पहचानी है । इस दृष्टि का सामना करने के लिए बहुत साहस और शक्ति चाहिए । आत्मविश्वास और कठोरता की ऐसी प्रतिरोधात्मक

ज्वाला चाहिए जो केशी की आंख से आंख मिलते ही बुझे नहीं—कौंधे ! उससे कहीं अधिक तीव्र चमक के साथ कौंधे !

बस, कुल एक ही शक्ति है केशी के पास। कंटक जानता है। यदि इस शक्ति का प्रत्युत्तर दे सका तो वह सत्य की सतह पाना तो दर-किनार, दृष्टि की पलक भी नहीं लांघ सकेगा।

केशी उसकी ओर से पीठ किए हुए। कंटक को यह भी ज्ञात है। केशी इसी तरह हर उस आदमी का सामना करता है, जिसे वह चौकाना चाहता है। मुड़ते ही उत्तर देने वाले को उसकी वेधक दृष्टि का सामना करना होता है। वह इतना आकस्मिक और तीव्रगति से होता है कि साधारणतः व्यक्ति अपने-आप को सहेज ही नहीं पाता। बस, व्यक्ति का यही असन्तुलन केशी की शक्ति बन जाता है। वह दम् से दृष्टि की राह उसके अन्दर तक। और पलक झपकते ही अन्दर की हर बात बाहर।

"प्रणाम निवेदित करता हूं, सेनानायक।" कंटक ने स्वर में विनम्रता और शब्दों में संयम सहेजकर कहा।

केशी मुड़ा नहीं। उसी तरह खड़े-खड़े प्रश्न किया था, "हमें ज्ञात हुआ है, कंटक, कि देवकी के पुत्र नहीं, पुत्री हुई ?"

"हां, देव।" कटक ने जैसे उपहास करते हुए उत्तर दिया, "भविष्य वक्ता असत्य सिद्ध हो गये सेनापति। जिसे महाराज कंस का काल कहा गया था, वह काल नहीं बन सका।"

केशी एकदम मुड़ा। उसकी दृष्टि जैसे आग उगल रही थी। उससे कहीं अधिक आग की ज्योति कंटक को अपनी ओर बढ़ती अनुभव हुई, पर कटक इस स्थिति को बखूबी पहचानता था। तुरन्त स्वयं को साध लिया। बोला, "वह पुत्री भी मथुराधिपति के हाथों हत हो चुकी है, सेनानायक ! अब उन्हें निश्चिंत होना चाहिए।" स्वर इतना सधा हुआ था कि केशी की दृष्टि-अंगार की ज्वाला लपलपाकर रह गयी। कंटक दृष्टि बराबर मिलाये रहा। पुतलियों की अस्थिरता ने केशी के संशय को, जो किसी-न-किसी रूप से निश्चय बन चुका था—अनायास पुनः संशय में बदल दिया। लगा जैसे वह प्रश्नरिक्त हो गया है। कुछ

नहीं सका, केवल कटक को देखता रहा और कंटक उसे'' अचानक केशी ने दृष्टि हटा ली। सहज हो गया था वह। पूछा, "क्या सच ही देवकी की आठवीं सन्तान पुत्र नहीं—पुत्री थी?"

कटक ने स्वर में पुनः वही उपहास संजोया। अद्भुत अभिनय-प्रवणता के साथ बोला, "क्षमा करें सेनापति! पुत्र और पुत्री का अन्तर पुरुष न भी समझ सकें तो स्त्रियां तो समझती ही हैं। और जिस समय देवकी ने कन्या को जन्म दिया, मेरी पत्नी उनके पास थी।"

केशी उसे घूरने लगा, पर तुरन्त ही उसे अनुभव हो गया था जैसे व्यर्थ चेष्टा कर रहा है। या तो कंटक का समाचार सही ही है या फिर वह पूरी तरह वसुदेव या वसुदेव के प्रभाव में आ चुका है। उससे बात निकलवाना लगभग असम्भव होगा। किन्तु कटक पर सहसा अविश्वास भी नहीं किया जा सकता था। अब तक हर काम को कंटक बड़ी जिम्मेदारी और ईमानदारी के साथ केशी के हिताहित में पूरा करता आया था। ऐसे विश्वस्त के प्रति कुछ सूचनाओं के आधार पर अविश्वास व्यक्त कर देना उचित होगा क्या?

कंटक पूर्ववत् दृढ था। हालांकि मन घबराहट से भरा हुआ। केशी को खूब जानता था वह। तनिक-सा सन्देह कटक के प्रति कठोरता ही नहीं, हिंस्र पशुता का भाव पैदा कर सकता है उसमें। पर इस क्षण उसने अनुभव किया था कि आत्मचेतना ने उसके भीतर विचित्र-सी आत्मशक्ति पैदा कर दी है। वह जैसे शिलाभाव से हर प्रहार को सहने के लिए तैयार है।

केशी ने गहरा सांस लिया। आसन पर बैठ गया। कहा, "गत रात्रि भयावह प्राकृतिक उत्पातों के बीच एक सैनिक आ पहुंचा था यहां। उसी ने समाचार दिया कि वसुदेव को उसने कारागार से बाहर जाते देखा था।"

"कारागार से बाहर?" कंटक ने पुनः बात छीन ली। बोला, "यह कैसे सम्भव है? वसुदेव तो पूर्ववत् अपने कारागार में उपस्थित हैं। यही नहीं, सतति-शोक से ग्रस्त वह और उनकी भार्या दोनों ही इस स्थिति में नहीं हैं कि बिना सहारा दिए उठ भी सकें। कौन है वह मूर्ख? क्या स्वप्न

देखने का आदी है ?" वह हंसा, नकली हंसी थी, पर बहुत स्वाभाविकता के साथ, "सेनापति, निश्चय ही वह मूर्ख सैनिक स्वप्न देखने का आदी होगा।"

जिस सहजता के साथ कंटक ने बातें कीं, उनमें सम्भव नहीं रहा था कि केशी आगे कुछ पूछताछ कर सके। विश्वास तर्क जा पहुंचा संशय। कहा, "जो भी हो, यह सूचना मिलने के कारण ही मैंने तुम्हे स्मरण किया था, पर अब मैं निश्चित हूं।"

कंटक कुछ नही बोला। व्यग्रता थमी। मन जो पल-पल मृत्युभय के बोझ से थका जा रहा था, हल्का होने लगा। केशी कुछ पल चुपचाप बैठा रहा, फिर उठकर चहलकदमी करने लगा था, बड़बड़ाता हुआ, "निश्चय ही उस मूर्ख सैनिक के संशय ने मुझे बहुत व्यग्र किया था। महाराज कंस भी सब कुछ सुन-जानकर कम चिन्तित नही हुए है किन्तु तुमसे वार्तालाप के बाद अब मैं निश्चित हूं।"

कंटक फिर भी चुप ही रहा। केशी ने कुछ पल चुप साधे रखा, फिर कहा, "अब तुम जा सकते हो !"

कंटक ने अभिवादन किया। मुड़कर बाहर निकल गया। कक्ष से बाहर आते ही उसे लगा कि उसकी चाल असंयत हो उठी है। वह चलना चाहता है, चल भी रहा है, किन्तु भागने की मुद्रा से। एक बार पुनः संभाला स्वयं को। फिर बाहर पहुचकर रथारूढ़ हुआ। एक बार मुड़कर सेनापति के भव्य भवन की ओर दृष्टि उठायी। देखा कि वह झरोखे में खड़े उसी की ओर देख रहे थे। कटक के भीतर भय की एक सिहरन सन्नाटा बनकर पूरे मन-बदन में बिखरी, किन्तु शरीर को उसने वश मे रखा। रथ चल दिया।

▭▭

केशी उसके रथ को तब तक देखता रहा था, जब तक कि वह दृष्टि से ओझल नही हो गया। फिर होंठ काटता हुआ मुड़कर अपने आसन पर आ बैठा। विचित्र-सी दुविधा मे फंस गया था वह। यदि सचमुच सैनिक का समाचार सही है, तब तो वसुदेव और देवकी का आठवा . .

२० : कालिन्दी के किनारे

कारागार के बाहर निकलकर किसी सुरक्षित स्थान तक जा पहुचा है और यदि कंटक पर विश्वास किया जाए तो लगता है जैसे सैनिक ने सचमुच ही कोई स्वप्न देखा।

मन हुआ था कि कंटक की सूचना पर ही विश्वास करे। न राजनीति के क्रूरचक्र मे इस तरह अन्धविश्वास पर चलना अनुचित है। केशी को समाचार के सत्य की तहो के भीतर तक पहुचकर खोजना-परखना होगा। सैनिक भयवश भाग खड़ा हुआ था कारागार से। जब यमुना सहज हुई और तूफान थमा तब वह केशी तक आया था। महाराज कंस उस समय कारागार जा चुके थे। सैनिक ने कुछ चौंकानेवाली सूचनाए दी थी सेनापति को। यमुनातट और कारागृह मे तूफान के कारण हुई उथल-पुथल और भयानक वर्षा की सम्पूर्ण कथा सुनाकर कहा था कि उसी बीच उसने एक नही, अनेक बार वसुदेव और वसुहोम को साथ-साथ यमुनातट की ओर जाते देखा था। सैनिक ने उनकी वापसी भी देखी थी। जाते समय भी वह शिशु लिए हुए थे, लौटते समय भी उनके पास शिशु था।

इसका अर्थ था कि शिशु को बड़ी चतुराई के साथ बदल दिया गया। पर किस तरह? क्या यह पहले ही आयोजित कर लिया गया था? या तुरन्त ही ऐसी स्थिति बन गई कि उन्हें शिशु का परिवर्तन करने का अवसर मिल गया? केशी का मन हुआ था कि उसी क्षण कारागार पहुचकर महाराज कस को सूचना दे। सैनिक को उनके समक्ष प्रस्तुत कर दे। किन्तु लगा कि व्यर्थ होगा। वसुहोम पर अन्ध-विश्वास करने लगे थे कंस। उसे लेकर बार-बार कस के पास सूचनाएं पहुचाना उन्हें केशी के प्रति ही संदिग्ध कर सकता था। यो भी कंस के शंकातुर और भयभीत स्वभाव से परिचित था केशी।

सम्पूर्ण जीवन जिसने छल-जाल से ही स्वार्थपूर्ति की हो, वह अपने-आप से भी कम भयभीत नही होता। भला कांच का घर बनाकर मनुष्य स्वयं को सुरक्षित कैसे अनुभव कर सकता है? दृष्टि-सुख भले ही ले ले। कंस की भी यही स्थिति है। छल-प्रपंच और षड्यंत्र-शक्ति के बलबूते पर राजा भले हो चुके हो, किन्तु सदा ही मन असुरक्षा के भाव से भय-

भीत रहता है। पिता के प्रति ही नहीं, सम्पूर्ण परिजनों-विश्वासी के प्रति अपराध-बोध में ग्रस्त कंस का मन, भयग्रस्त नहीं होगा तब क्या होगा! यह भयग्रस्तता ही किसी-न-किसी रूप में मन को अविश्वासी बना देती है। और अविश्वासी मन अधिक भयातुर हो उठता है। महाराज कंस की भी यही मनःस्थिति। इस मनःस्थिति में वह किसी पर भी कभी स्थायी विश्वास नहीं कर सके हैं। केशी करे ही क्या करेंगे?

केशी ने कारागार तक पहुंचकर महाराज कंस को समाचार देने का विचार त्याग दिया था, किन्तु संशय मन से नहीं हटा। और होते ही कंटक को बुलवा डाला और अब कंटक के प्रति भी अविश्वास होने लगा है। लगा था, इस संशय का कारण बहुत सीमा तक केशी की भी वही भयग्रस्त मनःस्थिति है, जो महाराज कंस या उन जैसे व्यक्तियों की हो सकती है। क्या केशी ने जीवन में कम छल किए हैं? कम विश्वासघात किए हैं?

केशी शान्त नहीं रह सका था। उठा और फिर व्यग्रभाव से चहलकदमी करने लगा। अनायास ही उसने एक ओर पहुंचकर प्रतिहारी को पुकार लिया था, और जब वह आया, तब कहा था, "उस सैनिक को पुनः उपस्थित करो जो कारागार से आया था।"

"जो आज्ञा, सेनापति।" प्रतिहारी सेवा पालन में चला गया। केशी आसन पर बैठकर सैनिक की उपस्थिति-प्रतीक्षा करने लगे। इस बार उससे कुरेद-कुरेदकर जानेंगे कि उसने क्या-क्या किस-किस तरह देखा।

ᗝᗝ

वसुहोम और अनुराधा व्यग्रता से कंटक की प्रतीक्षा कर रहे थे। चंचला एक ओर बैठी पल-पल पति की कुशलकामना करती हुई। केशी के दुष्ट स्वभाव को सभी जानते हैं! तनिक-सा संशय होते ही मनुष्य-हत्या में क्रूर केशी जरा संकोच नहीं करने वाला!

किस तरह थोड़ा-सा समय काटा—वही जानते हैं! बीच-बीच में

एक-दूसरे को देखते। लगता जैसे कुछ कह रहे हैं। हर कथन केवल कंटक की कुशल के प्रति व्यग्रता और चिन्ता से भरा हुआ। पर लगता था कि ईश्वर ने सब कुछ सहेज लिया है। कंटक रथ पर सवार जिस गति से गया था, उसी गति से वापस आया।

प्रसन्नता और आवेश मे भरकर तीनों उठ पड़े। चंचला तो रथ की ओर दौड ही पडी थी। सुखानद मे पलकें भर आयी थी उसकी। कंटक ने उसे स्नेह से बुलाया। फिर तेजी से वसुहोम और अनुराधा के पास जा खड़ा हुआ। सब पूछ लेना चाहते थे एक साथ, "क्या हुआ वहां ? क्या बोले सेनापति ?" पर पूछा नहीं। कटक कुछ क्षण सहज हो ले, तब यह सब उकेरन करना उचित होगा। पत्नी पात्र मे जल ले आयी। कटक ने कुछ घूट लिये, फिर कहा, "सेनापति को किसी सैनिक से समाचार मिला है, उसने वसुदेव को शिशु लाते-ले जाते देखा था।"

वसुहोम, अनुराधा और चंचला के चेहरों पर भय उतर आया। मुंह खुले रह गये। कंटक ने उन्हे सांत्वना दी थी, "मैंने केशी को विश्वास दिलाया है कि उस सैनिक को निश्चय ही धोखा हुआ होगा। हो सकता है कि उसने स्वप्न देखा हो।"

"किन्तु केशी इस उत्तर से सन्तुष्ट होगा—इसमे मुझे सन्देह है, मित्र।" वसुहोम ने कहा, "वह बहुत विश्वासहीन और भयभीत आदमी है। जानते हो ना ?"

"जानता हूं। किन्तु इस समय और मार्ग भी क्या था, वसुहोम ?" कटक ने जैसे हारा हुआ उत्तर देकर बात की राह बन्द कर दी थी।

वे सभी चुप हो गये थे। पर यह चुप खलबली से भरा हुआ था। सब जानते थे कि केशी चुप बैठने वाला आदमी नहीं है। वह घटना की तह तक जाने की कोशिश अवश्य करेगा और तह तक पहुंचने का उसका प्रयत्न गोकुल की सीमाओं मे पहुंच सकता था।

लगा था कि किसी-न-किसी माध्यम द्वारा गोकुल मे नन्द गोप के यहा समाचार पहुचाना चाहिए। सतर्क रहें···पर एक भय भी था। केशी ने निश्चित रूप से कंटक, वसुहोम, अनुराधा और चंचला पर अपने विश्वस्त गुप्तचर लगा दिए होंगे। बात की तह तक पहुंचने के लिए

केशी हर राह और सूत्र की तलाश में व्यस्त हो चुका होगा। यह उसका स्वभाव भी था, कार्यपद्धति भी। तब क्या किया जा सकता है ? लगा था कि भीतर से उत्तर आया है—कुछ नही। उनके वश में जितना कुछ था, कर चुके। अब केवल यही वश है कि सब कुछ ईश्वराधीन छोड़कर उस समय की प्रतीक्षा करें, जिस समय भाग्य परिणाम देगा ! हो सकता है कि नन्द गोप तक केशी के गुप्तचर पहुच भी जायें और यह भी हो सकता है कि नन्द को ही नही, केशी को भी कोई सूत्र न मिले।

अनुराधा बोली थी, "अब सब कुछ भाग्याश्रित है।"

"मैं भी सोचता हूं, अनु।" पति ने समर्थन किया था।

कंटक और चंचला मासूम बच्चो की तरह चुपचाप बैठे रहे थे। आगत का हर क्षण अनेकानेक आशकाओ से भरा हुआ था। थोड़ी देर बाद कंटक ने कहा था, "हम यह तो कर ही सकते हैं कि मथुराधिपति के राजनिवास में देवकीसुत को लेकर क्या कुछ खोजा-परखा जा सकता है, उसकी सूचनाए लेते रहे ?"

"उससे क्या होगा ?" चंचला ने उदास होकर प्रश्न किया।

"हो सकता है कि आगे कभी हम भी कुछ करने का अवसर पा जायें ?" कटक ने तर्क किया। चंचला चुप ही रही, किन्तु वसुहोम और अनुराधा ने कटक से सहमति व्यक्त की।

८

राजनिवास में केशी और उसकी गतिविधियों को लेकर कोई सूचना नहीं थी। मथुराधिपति तनावयुक्त देखे जाते थे। उससे कहीं अधिक प्रसन्न और निश्चित। मगधराज जरासन्ध की पुत्रियों से विवाह को तिथि तय हो चुकी थी। मथुरानगरी को तरह-तरह से सजाया जा रहा था। हर गतिविधि केवल हर्षोल्लास से भरी हुई थी। हर सेवक और राजकर्मचारी केवल विवाह-व्यवस्था से जुड़ा हुआ।

केशी स्वय भी समारोह के आयोजन का एक हिस्सा बना था, किन्तु तनावमुक्त नही था वह। लगता था कि उसके सूत्र जहां-तहां गतिविधियों से तो जुडे है, पर बहुत चोकन्ने और सावधान। किसी-न-किसी

स्तर पर उन्हें केशी की अन्य आज्ञा का पालन भी करना था। यह आज्ञा थी कारागार के सैनिक से मिली सूचना का सत्य परखने की।

पर उस समय तक ऐसा कोई संकेत नहीं मिला था, जिसके आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता कि देवकीसुत को कारागार से कहीं अन्यत्र भेज दिया गया है। केशी ने वसुदेव के हर मित्र, सम्बन्धी और स्नेही को लेकर सूचनाएं एकत्र करवा ली थी। अधिकतर लोग ऐसे थे, जिनका मथुरा में प्रभाव था। अधिकतर के यहां कोई सद्‌यःजात बालक भी नहीं था, जिनके यहां हुआ, वह आयु की दृष्टि से उस तिथि का मेल नहीं पाता था, जिस तिथि में देवकी को सन्तान प्राप्त हुई थी।

केशी चाहता था कि सूचना मथुराधिपति तक पहुंचा दे, पर डरता भी था। कहीं ऐसा न हो कि कंस का क्रोध उसी पर टूट पड़े। विशेषकर मथुराधिपति की इस प्रसन्नता में ऐसा समाचार उनको क्रोधित ही नहीं, हिंस्र कर देता। ठीक तरह प्रमाण न पाकर केवल अनुमान जतलाने-भर से वह केशी पर ही बिगड़ सकते थे। केशी ने निश्चय किया था कि विवाह समारोह पूर्ण हो जाने पर उन तक सूचना पहुंचायेगा। उस बीच यथाशक्ति प्रमाण भी एकत्र कर लेगा।

सैनिक ने टटोल-टटोलकर समाचार की हर तह निकाल ली थी। तहों से विचार गढ़े थे। पर कोई स्पष्ट बात नहीं बनी। बस, लगता था जैसे अनुमानों का शब्द महल सजा रहा है, जिसकी कोई बुनियाद नहीं। इस महल का कोई कंगूरा नहीं। कोरा एक कल्पना-निवास!

सैनिक ने वसुदेव और वसुहोम को उस भयावह प्राकृतिक उत्पात से भरी रात्रि में यमुना की ओर जाते देखा था। शिशु उनकी गोद में था। सैनिक अपनी जान बचाने के लिए कारागार की टूटी दीवार के सहारे छिपा बैठा था उस समय। हर क्षण इस आतंक से भरा हुआ कि न जाने कब मृत्यु किसी शिला, वृक्ष अथवा तूफानी वायु के रूप में ग्रस ले। रह-रहकर चमकती बिजली के बीच ही उसने उन्हें जाते देखा था, और फिर देर बाद लौटकर आते हुए। शिशु पूर्ववत् उनकी गोद में था।

केशी ने बीच में पूछा भी था, "तुमने उनका पीछा क्यों नहीं

किया ?"

भयातुर, कांपते सैनिक ने बतलाया था, "प्राणदान दें, सेनापति ! यह विचार ही मेरे मन में नहीं आया । बहुत देर तक तो विश्वास करने की चेष्टा ही करता रहा था मैं कि क्या जो देख रहा हूं, वह सत्य है ? एक बन्दी और कारागार अधीक्षक इस मित्रभाव से साथ-साथ आ-जा सकते हैं ? फिर सद्यःजात, कोमल शिशु को लिये हुए ? वह सब विस्मय-कारी था देव ! मैं तुरन्त सोच ही न सका कि क्या करूं, और क्या न करूं ?"

केशी बेबसी से दांत भींचकर रह गया । सैनिक पर क्रोध करना व्यर्थ था । सच ही जैसी स्थिति थी, उसमें वह जो कुछ कह रहा था, वह सहजतः घटा होगा ! फिर साधारण सैनिक ठहरा । इससे अधिक विचार-बुद्धि या निर्णायक शक्ति की उससे अपेक्षा करना भी व्यर्थ था । पूछा था, 'और···?"

"और कुछ नहीं, महाराज ! बस ।" सैनिक ने मिनमिनाकर बात समाप्त कर दी थी, "केवल इतना ही देखा-जाना, सो आप तक सूचना ले आया हूं ।"

केशी ने विदा कर दिया था उसे । फिर सूचना के आधार पर विचार संजोए । कोरी कल्पना या प्रमाणहीन वार्ता मथुराधिपति तक पहुंचाना व्यर्थ था । केशी अपने विश्वस्त गुप्तचरों को बुलाकर केवल निर्देश ही दे सका था । वसुहोम कंटक, अनुराधा और चपला पर कड़ी दृष्टि रखी जाए । उनकी हर गतिविधि, आवा-जाही की सूचनाएं तुरन्त केशी तक लायी जाएं । फिर यह कि वसुदेव के हर परिचित और मित्र के यहां पता लगाया जाए कि क्या सद्य जात शिशु उनके परिवारों मे जन्मा है ? यदि जन्मा है तो कब ? इस समय क्या आयु है उसकी ? उस बालक के जन्म को लेकर आस-पड़ोस में क्या कुछ कहा जा रहा है ? कोई अद्भुत बात है क्या ? क्या कहीं ऐसा कोई समाचार है कि किसी के यहां पुत्री हुई और बाद में पुत्र मे परिवर्तित हो गयी ? आदि ।

फिलहाल यही सब सम्भव था, यही किया जाने लगा ।

२६ : कालिन्दी के किनारे

मथुराधिपति कंस बड़ी धूमधाम के साथ मगधराज के जामाता बने। महाशक्तिशाली जरासन्ध की दोनों छोटी बेटियां, अस्ति-प्राप्ति मथुरा की पटरानियां बनीं। इस सम्बन्ध ने अनायास ही यादवेन्द्र कंस को अभूतपूर्व शक्ति से सम्पन्न कर दिया। मथुरावासियों ने भी इस अवसर पर हर्षोल्लास मनाया। यादव, वृष्णि और अन्धक वंशियों में से अनेक प्रमुख राजपुरुषों ने भी विवाह-समारोह में भाग लिया। पर वे उल्लसित नहीं थे। सभी को किसी-न-किसी स्तर पर वसुदेव और उग्रसेन की अनुपस्थिति अखरी, किन्तु कंस की शस्त्रशक्ति के सामने बेबस वे चुप रहे। कानाफूसियां भी हुईं, किन्तु बहुत दबी-मुंदी। भय से सिकुड़ी-सहमी। शब्द कुम्हलाये हुए।

आठ-दस दिनों मथुरा ही नहीं, सम्पूर्ण व्रज क्षेत्र कंस के विवाहोत्सव के समारोहों में डूबा रहा, फिर सहज हुआ। केशी इस बीच निरन्तर प्रयत्न करता रहा था कि सैनिक से मिली सूचनाओं पर कोई प्रमाण मिल जाये, किन्तु असफलता हाथ आयी। एकमात्र महत्त्वपूर्ण सूचना यह मिली थी कि वसुदेव के परममित्र नन्द गोप को वृद्धावस्था में पुत्र-प्राप्ति हुई है। गोकुल में आनन्द मनाया जा रहा है। किन्तु इस आनन्द के बीच किसी तरह की विघ्न-बाधा नहीं डाली जा सकती थी। नन्द गोप की पत्नी यशोदा गर्भवती थी और उन्हें सन्तान-प्राप्ति हुई, इसके आंखों देखे अनेक प्रमाण थे। प्रमाण नहीं था तो केवल यह कि नंद की पत्नी यशोदा ने कन्या को जन्म दिया या पुत्र को? सभी ने यशोदा की गोद में पुत्र ही देखा था।

गोकुल के हर गली-कोने में केशी ने गुप्तचर फैलाये, किन्तु ऐसी कोई सूचना नहीं पा सका जो यशोदा को लेकर किसी तरह की अफवाह के रूप में उपस्थित होती। पर जाने क्यों केशी का मन नन्दसुत को लेकर निरन्तर सन्देहाकुल होता जा रहा था। नन्द और वसुदेव की मैत्री जितना बड़ा कारण थी, उससे कहीं अधिक कारण था वह कल्पना, जिसके आधार पर नन्द और वसुदेव के बीच परस्पर सन्तानों को बदला गया होगा, यह संकेत मिलता था। गोकुल यमुना के पार और कारा-

गार की दिशा में ही था । फिर सैनिक ने जो सूचना दी थी उसके अनुसार वसुदेव और वसुहोम उसी दिशा मे जाते देखे गये थे, जिधर गोकुल स्थित था।

किन्तु प्रमाण के अभाव मे यह सब गपोडपन्थी ही कहलाती । यों भी नन्द गोप को छेड़ना, समूची गोप-जाति को चुनौती देने के समान था। नन्द केवल गोकुल ही नहीं, दूर-दूरंत जनमानस के बीच प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनकी सच्चरित्रता, दया, सेवा और मानवता को लेकर सभी के मन मे गहरी निष्ठा और आस्था थी। कंस भी सहसा नन्द के विरुद्ध कुछ सुनने को तैयार न होते। सुन भी लेते तो किसी तरह की कारवाई करने मे हिचकते।

केशी विचार-भर से हिचकिचा गया। प्रद्युम्न, चाणूर और मुष्टिक को बुलाकर अपनी सूचना पर विचार-विमर्श कर ही चुका था। सभी की सम्मति थी कि इस समय कस को यह सूचना देना ठीक नही होगा। एक तो विवाह-सुख से सम्पन्न कस इस अशुभ सूचना के कारण अस्त-व्यस्त हो सकते थे, दूसरे प्रमाणहीनता के अभाव मे उल्टे सामन्तों पर ही टूट पड़ते।

तव क्या किया जाये ? सबने सोचा। निश्चय किया कि कुछ दिन बीत जाने के बाद सूचनाएं, संशय और आशंकाओं से राजा को परिचित किया जाये। वह भी किसी ऐसे अवसर पर जब मथुराधिपति सयत और सहज हों। वे सब समय की प्रतीक्षा करने लगे। और वसुहोम, कटक आदि समय की प्रतीक्षा कर ही रहे थे। सभी को उचित और अनुकूल अवसर की तलाश थी। अब नहीं तो कभी-न-कभी समाचार मिलना ही था। अवसर भी। पर वह अवसर किस पक्ष को पहले मिल जाएगा—यही महत्त्वपूर्ण था। यही होता है विधाता का चमत्कार !

ᆖ

और चमत्कार हुआ। चमत्कार न होता तो भला गोकुल के वृषभानु कारागार आ पहुंचते ? किसी परिचित बन्दी से मिलने आये थे वह। किसी अपराध के आरोप में दंड भोग रहा था वह।

२८ : कालिन्दी के किनारे

कारागार की औपचारिकता के बीच ही कंटक से उनका परिचय हुआ था। बात-बात मे तह निकाली थी कंटक ने। पूछा था, "गोकुल मे नन्द बाबा कैसे है ? आप तो उनसे भेंट करते ही रहते होगे ?"

वृद्ध को प्रश्न पर अचरज हुआ। उत्तर मे व्यग्य करते हुए-से बोले, "कैसी विचित्र बात करते हैं उपाधीक्षक महोदय ? नन्द गोप गोकुल के प्रमुख हैं, और गोकुल कोई बडा नगर तो है नही ? ग्राम है। रोज ही उनसे भेट होती है। फिर वह तो मेरे विशेष मित्र हैं। उनकी पत्नी यशोदा मेरी पुत्री को बहुत स्नेह करती हैं।"

"सुनते है, वृद्ध नन्द बड़े सरलमन और सहृदय व्यक्ति हैं ?" कटक ने और टटोला। जब तक पूरी तरह आश्वस्त न हो जाये कि वृषभानु रहस्य-वार्ता के लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं, तब तक उन्हें वसुहोम से मिलवाना उचित नही होगा।

"हा, बहुत सरल, सहृदय, स्नेही और कृपालु !" वृषभानु ने कहा, "गोकुलवासी उन जैसा मुखिया पाकर अपने-आप को धन्य अनुभव करते है। ऐसा कोई घर, परिवार ग्राम मे नही है, जिसके सुख-दुख मे नन्द बाबा भागीदार न रहे हो ! वे और उनकी पत्नी यशोदादेवी, सम्पूर्ण ग्राम के लिए परिजन की तरह है।"

"आश्चर्य ! इतना स्नेह करते है उनसे ग्रामवासी ?" कटक ने जैसे अविश्वास से भरकर कहा।

"इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है, अधिकारी। नन्द है ही ऐसे।" वृषभानु ने उत्तर दिया, "यदि तुम उनसे मिलोगे, तो तुम भी यही प्रभाव लोगे। सत्पुरुष सर्वत्र पूजित होते हैं।"

कंटक आश्वस्त हुआ। प्रसन्न भी। जिस व्यक्ति और अवसर की उसे प्रतीक्षा थी, आ पहुंचा है। कहा था, "आप अपने बन्दी मित्र से भेंट के बाद अधीक्षक से भेंट अवश्य कर आइएगा। आप नन्द गोप के मित्र है। हो सकता है कि उन्हे कोई सन्देश देना चाहें। यदा-कदा नन्द बाबा की प्रशंसा करते रहते हैं। मैं उन्हे सूचित किए देता हूं।"

कंटक ने वृषभानु को बन्दी से भेंट का स्वीकृति-पत्र दिया, फिर उठ खडा हुआ। वृषभानु बोले थे, "अवश्य। मैं भेंट कर जाऊंगा।"

वृषभानु के जाते ही कंटक वसुहोम के पास जा पहुंचा। जो वार्ता हुई कह सुनायी थी। सुझाव दिया, "यही अवसर है वसुहोम, जब हम नंद गोप तक केशी को लेकर सावधान रहने की सूचना पहुचा सकते हैं!"

वसुहोम भी सहमत हुए। तुरन्त नन्द के नाम पत्र लिखा, फिर वृषभानु की प्रतीक्षा करने लगे। वृषभानु को पत्र सौंपकर दोनो निश्चित हो गये थे।

▭▭

उन्हें भी अवसर मिल गया था। कस उस दिन बहुत प्रसन्न थे। विवाह समारोह में आये सभी अतिथि राजा ससम्मान मथुरा से अपने-अपने राज्यों मे वापस लौट चुके थे। मथुराधिपति ने एक बार पुनः राजकाज की ओर नियमित ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया था। विशेष भेंटकक्ष मे केशी-प्रद्युम्न ने उनसे भेंट की। तनिक सकोच के साथ केशी ने वह समाचार कह सुनाया, जो उन्हे सैनिक से जानने को मिला था।

कंस ने सुना। चकित हुए। विश्वास करना चाहकर भी विश्वास नही कर पा रहे थे। पर प्रद्युम्न और केशी ने दबाव डाला था। यादवेन्द्र बोले, "वसुहोम विश्वसनीय है, सेनापति! यदि ऐसा कुछ होता तो..."

"किन्तु आप भूलते हैं राजन्! वसुहोम कभी, किसी समय वसुदेव का विशेष सेवक ही नही सर्वाधिक विश्वसनीय व्यक्ति रह चुका है।" प्रद्युम्न ने तर्क किया था, "हो सकता है कि कालान्तर मे वह पुनः वसुदेव के प्रति समर्पित हो गया हो। फिर यह भी कैसे भूला जा सकता है कि बालकों का वध किसी भी व्यक्ति के मन मे भावुकतापूर्ण दया-भावना पैदा कर सकता है।"

कंस निरुत्तर हुए। प्रद्युम्न की बात मे दम था। फिर याद आया। वसुदेव-देवकी के आठवी सन्तति पुत्र होना ही कहा गया था, पुत्री नहीं। इसके साथ-साथ यह भी कैसे बिसरा सकते थे कंस कि पूर्ण जिस भविष्यवक्ता ने वह भविष्य बतलाया था,

हो सकता था। एक बार पुनः भय और संत्रास ने ग्रस लिया था उन्हें।

"इस सबकी खोज-पड़ताल होनी चाहिए प्रभु !" केशी ने विनम्रतापूर्वक किन्तु सन्देहमिश्रित स्वर मे कहा था, "उस सैनिक की सूचना सम्पूर्ण तो नही है, किन्तु विचारणीय अवश्य है !"

"निस्सदेह !" प्रद्युम्न बोले।

कंस ने शकित मन कहा, "सैनिक से प्राप्त सूचना के आधार पर तुमने कारागार अधीक्षक या किसी अन्य अधिकारी से बातचीत की है क्या ?"

"वह सब किया जा चुका है, किन्तु लगता है कि सभी षड्यंत्र में भागीदार बने हुए हैं राजन् !" मंत्री प्रद्युम्न बोले थे, "और क्यो न हो ? देवकी-वसुदेव कम प्रभावशाली नहीं हैं। फिर उनकी सरलता भी प्रभावित करती है।"

कंस कुछ पल चुप रहे, फिर व्यग्र हो उठे। वसुहोम पर बहुत विश्वास किया था उन्होने। एक तरह से अपने-आप से अधिक, किन्तु प्राप्त समाचार उस विश्वास को व्यर्थ साबित किये दे रहा था। एक-दो बार पहले भी ऐसा हुआ था कि केशी को इसी तरह की सूचनाएं मिली थी। इन सूचनाओं की जाच-परख भी करवायी गयी थी। अन्त मे वसुहोम ही सच साबित हुआ। कही इस बार भी तो···कहा, "सेनापति ! राजनीति मे कभी कोई विश्वसनीय नही होता, फिर भी विश्वास की मात्रा अवश्य होती है और उसी मात्रा पर व्यक्तियो का महत्त्व निर्धारित होता है। वसुहोम भी औरों की तरह ही है, किन्तु उसने राजविश्वास अर्जित किया है। पहले भी अनेक बार उसे लेकर मिली सूचनाएं असत्य प्रमाणित हो चुकी हैं। कही ऐसा न हो कि इस बार भी···"

"किन्तु महाराज, राजनीति का सिद्धांत यह भी तो है कि हर सूचना को जांचा-परखा जाए।" केशी ने विनम्रतापूर्वक किन्तु डरते हुए उत्तर दिया था, "वसुहोम निस्सन्देह विश्वासपात्र रहे है, किन्तु जिस सैनिक ने सूचना दी है, उसे भी तो बिना जांच-परख के हम अवहेलित नही कर सकते ! यह उपेक्षा नीति की दृष्टि से कहां तक उचित होगी, तनिक विचार करें।"

कंस पुनः कुछ पलों के लिए चुप हो गये। केशी और प्रद्युम्न चिन्तातुर उनकी ओर देख रहे थे। थोडी देर बाद मथुराधिपति ने कहा था, "ठीक है। तब तो तुम ही बतलाओ, प्राप्त सूचना की खोज-परख किस तरह से की जाये?"

"वह संभव नही है, देव!" केशी ने उत्तर दिया था। आगे कुछ कहते, इससे पूर्व ही मथुराधिपति झुझला पड़े। कहा, "यह भी संभव नही है, वह भी संभव नही है और आप लोग चाहते हैं कि एक व्यक्ति को बिना किसी प्रमाण के दोषी मान लिया जाये? यह कैसे हो सकता है? क्या यह उचित होगा सेनापति, कि आपकी सम्मति पर हम महामंत्री को अविश्वसनीय घोषित कर दें। या महामत्री के कहने पर आपको विश्वासघाती समझ लें?...यह कौन-सी नीति होगी?"

सहम गया था केशी, पर हारा नहीं। जानता था कि उग्र स्वभाव कंस इसी तरह उत्तेजित हो सकते है। तिस पर वसुहोम का मामला अपरोक्ष रूप से ही सही पर उनकी परख मे त्रुटि निकालने का दुस्साहस था। स्वर को तनिक सहेजते हुए उत्तर दिया था सेनापति ने, "क्षमा करें राजन्! आपका विचार उचित ही है, किन्तु जाने क्यो मेरा मन आशकाग्रस्त हो उठा है। हो सकता है कि इसका कारण मेरी मानसिक कायरता हो, पर ऐसा हुआ है और मैं मानता हूं कि आशंकाग्रस्त मन को आशंकाहीन कर लेना ही सतर्कता है। इसी कारण एक प्रस्ताव लाया हूं—विचार करें।"

कंस ने चौंककर केशी को देखा। चाटुकारिता से चेहरा दमदमा रहा था उसका। बोला, "महाराज! एक उपचार है। कटु तो है, किंतु लगता है कि इस समय सावधानी और सतर्कता की दृष्टि से इस कटुता का ही आसरा लेना उचित होगा। आप धृष्टता न समझें तो निवेदन करूं।"

"कहो।" कंस आसन से उठे। व्यग्रतापूर्वक एक ओर जा खड़े हुए। दृष्टि केशी-प्रद्युम्न पर टिका दी थी। विश्वास उन पर भी नही करते थे किन्तु लगता था कि विश्वास जतलाये बिना उनके पास राह भी नहीं है।

३२ : कालिन्दी के किनारे

केशी ने कहा था, "अभी देवकी को सन्तान-प्राप्ति हुए अधिक दिन नही हुए हैं ! यही कोई दस दिन बीते हैं। यदि आपका आदेश हो तो शूरसेन जनपद के सभी क्षेत्रों और ग्रामों में दस दिन के भीतर-भीतर जन्मे सभी सद्यःजात शिशुओं का वध करवा दिया जाये ?"

कंस हतप्रभ हो गये। जी हुआ था कि चीख पड़े—यह क्या कहते हो तुम ? किन्तु स्वर संयत रखा। सोचने लगे।

प्रद्युम्न आगे बढ़ गये थे। केशी के शब्दो का समर्थन करते हुए सिर झुकाकर कहा था, "सेनापति की सम्मति उचित है राजेन्द्र !"

कंस ने उन्हे भी विस्मय से भरकर देखा।

प्रद्युम्न के चेहरे पर विचित्र-सी शांति थी। ऐसे जैसे पल-भर पहले लगे दावानल से धुआं निकल रहा हो, लपटें गुम। कहा था, "चकित न होइए महाराज ! मैंने ठीक ही कहा है। राजनीति मे पाप-पुण्य का विचार नही होता, केवल सामयिक सफलता देखी जाती है। इस दृष्टि से सावधानी हेतु सेनापति का सुझाव उपयुक्त है। स्वीकृति दें।"

कंस को लगा था कि बुद्धि, चेतना और माथा सभी कुछ जड़ हो गए हैं। सेनापति और महामन्त्री उसकी बुद्धि भी थे, शक्ति भी। उनसे इतर न विचार कर पाना शेष था, न कार्यरूप मे परिणत करना। कहा था, "यदि आप लोगों की सम्मति यही है, तब यही करें !"

केशी और प्रद्युम्न ने सिर झुकाया और विदा ली। लगता था कि राजा से जो आदेश ले आए हैं, वह क्रूरता ही नही, अमानवीयता और पशुता से भरा-पूरा है। जनपद में असख्य बालकों ने जन्म लिया होगा। उन सभी का वध कर देना सावधानी होगी या निर्ममता ? निश्चय कर पाना कठिन नहो था, किन्तु लगता था कि कायर मन इससे अधिक सोच-समझ नही पा रहा है ? भयातुर व्यक्ति कितना कायर होता है ? प्रद्युम्न ने सोचा, फिर विचार घोट लिया।

▭▭

वे चले गये, पर कंस पूर्ववत् बैठे हुए। उनके कानो मे उस पल भी केशी और प्रद्युम्न की दी हुई सूचनाए लग रही थी, उससे जुड़ी हुई

ज्योतिषियों की सूचनाएं, "महाराज ! हमें क्षमा कर दें ! अनेक बार सत्य इतना कटु होता है कि उसे कहते हुए भय लगता है ।"

कंस चिढ़ उठे । उत्तेजित होकर कहा था, "आप निर्भय होकर कहें । यदि अशुभ भी हुआ तो हम उसे भी सुनेंगे । उसको शुभ में परिवर्तन का विचार करेंगे !"

ज्योतिषी एक-दूसरे का चेहरा देखने लगे जैसे सलाह कर रहे हों कि जो कुछ कहना है क्या कह डाला जाये ?

"बोलिए ।" कंस का आदेश पुनः गूंजा था ।

और, उनमें से एक ने कह दिया था, "राजन् ! देवकी की जिस सन्तान का वध करके आप स्वयं को कालमुक्त समझ रहे हैं, वह असत्य है । आपका काल व्रजभूमि में जन्म ले चुका है । ठीक उस समय, जिस समय आपने अपना काल समझकर उस निरीह बालिका का वध किया था ।"

"क्या…?" कंस ने सुना । अविश्वास और अचरज से उन्हें देखा था, फिर अधिक कुछ बोल नहीं सके ।

"हां, देव । यह सत्य है ।"

नहीं मानना चाहा था । उस समय माना भी नहीं था, किन्तु आज केशी और प्रद्युम्न की सूचना ने मानने के लिए बाध्य कर दिया है । ज्योतिष-गणित के आंकड़े और राज-सूचनाओं ने मिलकर सिद्ध किया है—वह सच असत्य था, जिसे सत्य समझकर मथुराधिपति कंस अपने विवाह-सुख में तल्लीन हो गये थे ।

अस्त-व्यस्त हो उठे और व्यग्रतापूर्वक कक्ष में घूमने लगे । लगता था कि मन, उत्साह, आनन्द सभी कुछ बिखर गये है । ऐसे कि उन्हें बटोरकर एकत्र कर पाना लगभग असम्भव है ।

सहसा जबड़े कस गये थे उनके । एक उग्र निश्चय जन्मा था उनके भीतर । यह उग्रता ही उनकी शक्ति थी । यह उग्रता ही कंस का सम्पूर्ण । अपने से ही बड़बड़ाकर कहा था उन्होंने, "असम्भव ! ऐसा नहीं होगा ! यह कभी नहीं होने देंगे । कंस का काल बनकर जन्मा वह शिशु व्रजभूमि में ही नहीं, पृथ्वी के किसी भी कोने में जन्म ले—कंस

उसकी हत्या करवा डालेंगे !"

इस उग्र विचार ने तनिक देर के लिए सहजता प्रदान कर दी थी उन्हें। कैसा लगता है जब मनुष्य अपने ही भीतर जन्मे सत्य को केवल बौद्धिक कुतर्क की शिला के नीचे दबा ले? बहुत सुखद स्थिति होती है। अह को आनन्दपूर्ण शांति देने वाली इस शांतिपूर्ण निर्णय के बरगद तले कुछ पल के लिए सुलगते मन को विश्राम देंगे कंस। वहीं करने लगे। बैठे रहे। कुछ और सोचें, इसके पूर्व ही सूचना आ पहुंची थी रनिवास से, "महाराज की जय हो ! महारानी स्मरण कर रही हैं।"

प्रश्न जन्मा था मन में—पूछें कौन-सी? देवी अस्ति या प्राप्ति? पर नहीं पूछा। सुना और अंगुली के संकेत से सेविका को लौटा दिया।

देर तक सहज शान्त होने का प्रयत्न करते हुए बैठे रहे। फिर उठे और रनिवास की ओर चल पड़े। पर ज्योतिषियों द्वारा कभी पैदा किया गया सन्देह अब निश्चित आशंका में बदल चुका था—उसे विस्मृत करने में स्वयं को असमर्थ पा रहे थे वह। चल रहे थे, किन्तु यंत्रभाव से।

▭▭

दोनों ही रानियां प्रतीक्षा कर रही थीं। दोनों ही बहिनें। दोनों महाप्रतापी जरासन्ध की सुन्दर पुत्रियां। दोनों गुणमयी और तेजस्वी। किन्तु दोनों की रुचियों और स्वभाव में असामान्य अन्तर।

अस्ति—पिता की ही तरह कूटजाल से पूर्ण थी। उतनी ही उग्र, उतनी ही शक्ति-साधिका, उतनी ही क्रोधी।

और प्राप्ति—जल-सी शान्त। आकाशवत् गंभीरता से पूर्ण और विपरीत से विपरीत स्थिति में भी संयम न खोनेवाली। क्रोध और आवेश उसके स्वभाव में नहीं थे। पवित्र हंसी और निर्मल आचरण में उसकी गति।

दोनों ने ही मुसकराकर राजा को प्रणाम किया। स्वागत में आगे बढ़ीं। कंस ने एक-एक कर दोनों के चेहरे देखे थे, फिर एक गहरा श्वास

लेकर कहा था, "क्षमा करें देवियो, एक राजचिन्ता के कारण मन खिन्न है। इसी कारण समय इतना लगा।" वह आसन पर बैठे रहे।

अस्ति ने पूछा था, "जान सकती हूं महाराज, क्या चिन्ता है ?"

"जान लोगी !" कंस ने उत्तर दिया, फिर प्राप्ति की ओर टकटकी लगाये देखते रहे। समझते थे कि यह कुछ नहीं पूछेगी। एक बार ऐसी बात कंस स्वयं भी कहना चाहें तो उससे कतराने का प्रयत्न ही करेगी। कहेगी, "राजन् ! अन्तःपुर और राजसभा में अन्तर होता है। आप अपनी व्यग्रता और चिन्ताओं को बुद्धिमान् और नीतिज्ञ मंत्रियों की सहायता से हल करें। स्त्रीधर्म केवल उद्विग्न मन पुरुष को सहजता और स्वाभाविकता देता है। इस क्षण वही आपका वांछित है।"

कंस ने गहरा श्वास लिया। कहा, "देवि ! आप सभी के साथ से शक्ति मिलती है हमें, किन्तु इस समय आप विश्राम करें।"

उन्होंने परस्पर देखा, फिर अपने-अपने कक्ष में समा गयीं। कंस पुनः अकेले हो गये। सोचने लगे थे, इस असहज मन को लिये हुए किस पत्नी के नेह तले शांत हो सकेंगे ? अस्ति या प्राप्ति ? सहसा उठ पड़े थे वह। प्राप्ति के कक्ष की ओर बढ़ गये। द्वार में प्रवेश करते ही सेविका ने कपाट बन्द कर दिये।

▭▭

प्राप्ति जानती थी—वह आयेंगे ! जब-जब उखड़ाव और बेचैनी से भरे होते थे, प्राप्ति के पास ही आया करते थे। साथ ही प्राप्ति यह भी जानती थी कि वह अपने स्वभाव से बाध्य हैं। राजदंभ उन्हें स्वयं के अतिरिक्त विचार नहीं करने देता। यही स्थिति होती है जब वह उग्रता और क्रोध के दावानल में झुलस उठते हैं और दावानल किसी अन्य को जलाने के निर्णय के साथ-साथ बहुत कुछ उनका अपना भी स्वाहा कर डालता है। इस समय भी यही स्थिति है शायद।

कंस आगे बढ़े—महारानी के सामने जा खड़े हुए। क्लांत और थके हुए। प्राप्ति को लगा था कि मुसकान ही इस थकन का उपचार है। नेह के साथ मुसकराकर राजा को हाथ थामे हुए पलंग पर ले आयी

थी। बिठाकर कहा था, "महाराज किसी राजकारण से चिंतित हैं, किन्तु चिन्ता किसी वांछित की प्राप्ति का उपचार नही बनती।"

कस बोले नही। रानी की निर्मल दृष्टि को टकटकी बाधे देखते रहे। प्राप्ति झुककर उनके चरणो मे बैठ रही। दासी की तरह पादुकाएं उतारी। कस देखते रहे। अस्ति कभी ऐसा व्यवहार नही करती। प्रति पल स्मरण रहता है उसे कि वह महाप्रतापी जरासन्ध की पुत्री है। जाने क्यो मन हुआ कि प्राप्ति को कन्धो से थामकर अपने करीब बिठा लें, कहे, "नही देवी! यह कार्य तुम्हारा नही है!" पर नही कहा। वैसा किया भी नही। याद था, एक बार ऐसा करने पर प्राप्ति ने उत्तर दिया था, "तब मुझे ही बतलाइए, देव! क्या कार्य है मेरा? केवल शृंगार? केवल आकर्षण की आराधना? केवल राजवैभव? यह सब तो मुझे वस्तु बना देगा, राजन्!"

और कस चुप हो रहे थे।

प्राप्ति ने पति की पादुकाएं उतारकर एक ओर रख दी थी, फिर कहा था, "राजन्! मन को शांत कीजिए। व्यग्रता अक्सर मनुष्य को असहज निर्णयों की ओर ले जाती है। उचित यही होगा कि…"

कंस ने बात काट दी। बोले, "नही देवि! हम व्यग्र नही हैं, केवल चकित हैं। अपने ही विश्वस्तों के प्रति जुटाया गया विश्वास खडित होते हुए देख रहे हैं। क्या यह दुख देने के लिए काफी नही?"

"राजनीति मे विश्वास नही किया जाता राजन्। केवल परख होती है।" प्राप्ति बोली थी, "जिस क्षण परख पर कोई व्यक्ति खरा न उतरे, उसी क्षण उस व्यक्ति के प्रति सावधान हो जाना चाहिए। पूज्य पिता की कार्यप्रणाली मे मैंने यही देखा है।"

"किन्तु देवि! विश्वासघात के कारण हम कालचक्र मे उलझ गये हैं।" कंस ने उत्तर दिया था, "ज्ञात हुआ है कि देवकी और वसुदेव की सन्तान गुप्त रूप से कारागार से बाहर निकाल दी गयी है। अब वह कहां, किस स्थान पर, किसकी गोद मे पल रही है—हमे ज्ञात नही। ज्योतिषी कहते हैं कि हम अपने काल को नष्ट नही कर सके।"

प्राप्ति ने उत्तर नही दिया। टकटकी बांधे हुए पति को देखती

रही। महाराज कंस आसन पर लेट गये थे। पलकें मूंद ली थीं उन्होंने। मुखाकृति पर उस समय भी तनाव अंकित था···प्राप्ति चुपचाप देखती रही। मन हुआ था, कहे, "राजन्! भला काल का नाश भी कोई कर सका है?" किन्तु नहीं कहा। पति का स्वभाव जानती है। ईश्वर की सत्ता पर उन्हें तनिक भी विश्वास नहीं है···एक बार तर्क-वितर्क में ही समझ लिया था उसने—कंस किस तरह सोचते हैं। वही दिन याद हो आया।

महाराज कंस से उस दिन बात-बात में ही बात निकल आयी थी। बोले थे, "मनुष्य से इतर कोई शक्ति नहीं है देवि! वह कालजयी हो सकता है—सभी कुछ उसके वश में है। बुद्धिमान लोग अपने लिए संदेह और आशंकाओं की धरती भी मिटा डालते हैं। हमारा विश्वास यही है।"

"किन्तु मेरा विचार तनिक अलग है, राजन्!" प्राप्ति ने विनम्रता के साथ कहा था, "मनुष्य के वश में केवल कर्म-आराधना है। वह भी संसार और जीवन के प्रति। इससे अधिक कुछ भी नहीं। इसी कर्म-आराधना में वह शुभाशुभ का संयोजन करता है। यही कर्म-आराधना होती है जो उसे अमरत्व प्रदान करती है और यही यदि पथभ्रष्ट हो जाये तो उसका काल बन जाती है।

कंस के माथे पर बल पड़ गये थे। स्तब्ध देखने लगे थे पत्नी को। किन्तु प्राप्ति निश्चिन्त थी। अपने विचारों पर दृढ़। गिरिव्रज में जिन सन्तों, बुद्धिजीवियों का संगति लाभ किया था, उनसे यही कुछ सीखा था। यही कुछ समझा था। जैसे-जैसे अधिक विचारा, मन की अशांति दूर हुई। वही सब पति से कहे गयी थी—नहीं जानती थी कि कंस पर क्या प्रतिक्रिया हो रही है?

▭▭

और कंस पर उल्टी प्रतिक्रिया हुई थी···लगता है कि महाराज जरासन्ध ने बेटी को क्षत्रिय संस्कार देने के बजाय, ब्राह्मण संस्कार दे दिये हैं। तभी तो जीवन से इतर लोक की बातें करती है! प्राप्ति को और कुरेद दिया था उन्होंने, "देवि! हमारा विचार है कि मनुष्य अपने

है।" कंस ने दंभोक्ति की थी।] उत्तर में प्राप्ति केवल हंसकर रह गयी थी। आज वही सब याद हो आया था उसे। कालमुक्ति का दंभ भरने वाले मथुराधिपति आज पुनः कालभय से आक्रांत उसके पास जा बैठे हैं। मन हुआ था कि उन्हें उस दिन की वार्ता का स्मरण करवा दे, पर चुप रहना उचित समझा। पति को क्लेश नहीं पहुंचाना चाहती थी वह। इस क्षण उन्हें सुबुद्धि देना ही उसका धर्म है।

▭▭

कंस उसी तरह लेटे थे। पलकें मुंदी हुईं थीं। प्राप्ति पति को देखती रही। पल-भर पहले अपनी चिन्ता का जो संकेत दिया था उन्होंने, प्राप्ति को सविवरण सब कुछ ज्ञात था। राजनिवास में रहते हुए भी वह यह नहीं भूली थी कि वह एक नीतिज्ञ सम्राट् की बेटी है। भीतर-बाहर से पूरी तरह सतर्क, सूचित और सावधान रहना उसका स्वभाव था। मगध से साथ आयी सेविका यही दायित्व सभाले हुए थी। विश्रांति नाम था उसका। दो दिन पूर्व वही समाचार ले आयी थी कि वसुदेव-देवकी की जिस सन्तान को लेकर महाराज कंस कालभय से आक्रांत हैं, वह गुप्तरूप से कारागार के बाहर पहुंच चुकी है। प्राप्ति ने जानना चाहा था, "कहां ?" किन्तु पूछा नहीं। कालमुक्ति हो सकती है। इस कुतर्क के प्रति उसके मन में तनिक भी विश्वास न था, अतः यह जानने-पूछने की रुचि भी नहीं हुई।

विश्रांति ने बहुत कुछ सुनाया था। किस तरह महाराज कंस मगध-राज की सहायता से सिंहासनारूढ़ हुए थे, किस तरह पिता को बन्दी बनाया था और फिर किस योजना के अनुसार वसुदेव और देवकी का विवाह करवाया था और यह भी कि तनिक-सी सूचना मिलते पर उन्होंने वसुदेव-देवकी को कारागार में डाल दिया था। प्राप्ति सब जान-कर आहत हुई थी। सर्वाधिक आहत इस सूचना ने किया था कि कंस ने बड़ी निर्ममता के साथ देवकी की हर सद्यःजात संतति की हत्या कर दी थी। छि., मन विचारमात्र से घृणा में डूब गया था। शिशुओं की हत्या ! केवल कालभय के कारण ?

सहानुभूति सहज स्त्रीत्व भावना के वशीभूत देवकी से जा जुड़ी थी। मन भी हुआ था उन्हें देखने का। कैसी अद्‌भुत नारी होंगी वह। वह जिन्होंने अनेक बार मरकर जिया है, या यह कि मृतभाव से जीवित हैं।

जब-जब कंस सामने आते थे, तब-तब मन अजब-सी विरक्ति से भर उठता था। केवल संस्कार-भर थे कि यांत्रिक भाव से पति की यथाशक्ति सेवा करती। अनेक बार उन्हें सद्‌बुद्धि भी देनी चाही थी, यह सब अनुचित है महाराज! अधर्म तो हो चुका है, किन्तु उसके लिए प्रायश्चित्त करना अब भी आपके हाथ है। पर जिस तरह सोचा, कह नहीं सकी। कहने योग्य कभी स्थिति भी नही बनी—समय भी नही आया और न ही पति को सहज देखा। विवाह के बाद जितनी वार्ता हुई थी, उसीसे समझ लिया था कि वह मनुष्य रूप मे यत्र हैं। भावशून्य होकर केवल राजनीति के कटु पाषाण-पुरुष! उनसे कुछ कहना ऐसे ही है, जैसे शिला पर पानी के छीटे उछालकर उसे गलाने की चेष्टा की जाये।

जिस क्षण विश्रांति ने सूचना दी थी, उसी क्षण लगा था कि मन किसी अदृश्य कोने मे इस समाचार को पाकर प्रसन्न हुआ है। देवकीसुत बच गया! किसी षड्‌यंत्र को सहायता से ही सही, किन्तु उसकी प्राण रक्षा हुई!

पर वह भी मन ही था जो क्षुब्धता भी अनुभव करने लगा। देवकीसुत का जीवन उसके पति के लिए शुभकर नहीं है। निश्चय ही वह उनका काल-पुरुष होगा। और फिर तर्क-वितर्क उठ आये थे मन में। एक पक्ष था जो देवकी के मातृत्व में झुकता, लगता कि तर्क करने लगा है—"क्या किसी पतिरूपी व्यक्ति का काल होने के कारण ही मनुष्य को किसी स्त्री का अधिकार छीन लेने की कुचेष्टा और महापाप करना चाहिए? उसे तुम उचित समझती हो?"

"निस्सन्देह नही!" अकुलाकर प्राप्ति अपने ही भीतर उत्तर देने लगी थी, "कदापि नही!" "तब देवकीसुत का बचना मनुष्यता की दृष्टि से उचित हुआ। उसके बचने से किसी का वध भले आशंकित हो, किन्तु उसे बचने का अधिकार था। स्वाभाविक मानवीय अधिकार। उसका बचाव, स्त्रीत्व का बचाव है। साक्षात् ममता की रक्षा है।"

"किन्तु···" अजाने ही यह छोटा-सा निषेध शब्द भी जनमता मन में, पर बहुत अशक्त था वह विचार। इतना अशक्त कि प्राप्ति अपने ही भीतर न चाहते हुए भी निरुत्तर हो जाती। कितनी चाहती थी कि पति-पक्ष में तर्क करें। भले कुतर्क की सीमा तक पहुंचा हुआ केवल हठ ही हो। पर करें। किन्तु न जाने किस अदृश्य संवेदन-शक्ति ने उन्हे यह सब न करने के लिए बाध्य कर दिया था। इतना बाध्य कि वह अपने-आप को अशक्त अनुभव करने लगी थी। उल्टे अनेक बार वह देवकी-वसुदेव के पक्ष मे ही निर्णय देने लगती। उस निर्णय को तर्क से भी शोभित करती! समाचार पाकर कहा था उन्होंने, "यह सब तो होना ही था। अधर्म की शक्ति है—पर सीमाओ मे बधी हुई। धर्म आदि-शक्ति। उस पर अधर्म से जय पाना असम्भव।"

विश्रांति चकित होकर देखने लगी थी महारानी को। क्या सच ही उसने जो सुना है, वह कूट और क्रूर राजनीति के पक्षधर जरासन्ध की बेटी का कथन है? कंस जैसे उग्र शक्तिपूजक राजा की पत्नी का उत्तर है? निस्सन्देह उन्ही का उत्तर था। उन्ही का तर्क। लगता था कि दृष्टि से लेकर शरीर तक के हर अंग में तेज की एक जगमगाती हुई धारा दीखने लगी है। यह स्त्री नही है केवल तेज है। सत्य और सनातन का अदृश्य तेज।

विश्रांति मुग्ध भाव से देखे गयी थी। सहसा उसे लगा था कि महा-रानी को कुरेदना चाहिए और कुरेद दिया था उसने। पूछा था, "क्षमा करें देवि! क्या सच ही आप ऐसा सोचती हैं? महाराज कंस के लिए वह बालक काल हो सकता है। यही नही, वह आपके वैभव, राजस और सम्मान के लिए भी नाशकारी है! आप उसके बच जाने पर हर्ष व्यक्त कर रही हैं?"

"नही, विश्राति!" एक गहरा सांस लेकर प्राप्ति ने उत्तर दिया था, "मैं उसकी जीवनधारा पर नही, देवी देवकी के मातृत्व की रक्षा हो जाने पर प्रसन्न हूं। यह कैसे भूल सकती हूं कि देवकी भी स्त्री है। ममता और नारीत्व उनका सहज अधिकार है। एक स्त्री के सहज अधिकार हनन पर किसी अन्य स्त्री को प्रसन्नता कैसे हो सकती है?

तनिक सोचो तो, यदि देवकी के स्थान पर मैं रही होती अथवा जीवित रहते हुए यह अनेक बार का मरण किसी अन्य स्त्री ने झेला होता तो क्या प्रतिक्रिया होती उस पर ? अपने ही शरीर अंश को, अपनी ही दृष्टि के सामने हत होते देखना कितना वेदनादायक होगा ?" आवाज रुंधने-सी लगी थी उनकी, "ओह, कल्पना ही कठिन है। विचार तक कष्टकर।" प्राप्ति ने दोनों आंखें मूंद ली थी। सिर पीछे टिका दिया। लगा कि बेसुध-सी हो गयी है।

विश्राति कुछ पलों तक टकटकी बाधे उन्हें देखती रही। दृष्टि में सम्मान था, उससे भी कहीं आगे शायद पूजा-भाव की श्रद्धा। फिर बिना कुछ कहे—लौट गयी थी वहां से।

फिर विश्राति टूटे-फूटे समाचार सुनाती रही थी उन्हें। एक के बाद एक। पर किसी समाचार में यह नहीं ज्ञात हो सका था कि देवकीसुत है कहां। कोई कहता महावन में है, कोई कहता काम्य के किसी ग्राम में और किसी की राय थी कि बरसाने या गोकुल में। एकदम मथुरा के समीप। वृन्दावन क्षेत्र में। निश्चित कुछ नहीं था। और समाचार मिला था उसे कि महाराज कंस ने दस-बारह दिनों में जन्मे हर शिशु की हत्या करवाने के आदेश दे दिये हैं। अस्ति भी चकित हुई थी—किन्तु प्रतिक्रियाहीन रही। केवल प्राप्ति ने इस समाचार को दिन में मन को दावानल में झुलसते हुए महसूस किया था।

▭▭

इसके बाद क्या कुछ होता रहा था, किस तरह होता रहा था, वह सब भी वेदनादायक। एक के बाद एक घटनाएं होने लगी थी। हर दिन उत्तेजना से भरा हुआ। प्राप्ति सब कुछ पथरायी दृष्टि से देखती रहती। मन आशंकाओं और चिन्ताओं से भरा बबूल वृक्ष बन गया। जिस करवट सोती, उसी करवट कांटों का अहसास होता। जाने क्यों लगता था कि इस सबका अन्त बहुत भयावह होगा। इतना भयावह कि उसे झेल पाना मृत्यु से अधिक वेदनादायक होगा। हो सकता है कि महाराज कंस मृत्यु पाकर इन सभी कष्टों से मुक्त हो जायें, किन्तु प्राप्ति ? वह

जलेगी। निरन्तर जलती रहेगी। पति की क्रूरता का दण्ड उसे सुलगाता रहेगा। असंख्य लपटें होगी। असंख्य झुलसनें। और उन सबके बीच होगी प्राप्ति। वैधव्य की अधजली स्थिति में एक न एक दिन उस घिनौने आगत को झेलना होगा, जो महाराज कंस की क्रूरता सभावित ही नहीं निश्चित किए जा रही है।

कितना विचारती थी कि वह सब न हो। कितनी प्रार्थनाए सजोती कि वह न घटे जो स्वप्नों तक मे प्राप्ति के मन को झकझोरकर जगा देता है। पर वही मन था जो लगभग निश्चित किये जा रहा था कि वह सब होना है और होगा एक दिन प्राप्ति इस समूचे राजवैभव के बीच भी रिक्त भाव से भिक्षुणी बनी खड़ी होगी। उसके साथ-साथ अस्ति भी। जिस पति के राजतेज, शक्ति और वैभव ने उन्हे सत्ता, अधिकार और गरिमा के शिखर पर जा पहुचाया है—वही पति होगा जिसकी घृणित चेष्टाए और पाप एक दिन उन्हें असख्य दृष्टियो के लिए केवल घृणा का पात्र बना देगी। एक विकृत भाव प्राप्ति को उसके अपने ही भीतर नाग की तरह डसने लगा। फिर यह विष मन, मस्तिष्क और आत्मा तक को ग्रसते चले गये। इतना ग्रसा कि प्राप्ति अस्तित्व-हीन होने लगी। केवल अहसास बनकर रह गयी। केवल अनुभव। और अनुभवों का यह दलदल गहरा···सम्पूर्ण अस्तित्व को निगलता हुआ। निगल भी लिया था उसने। कभी सुना था कि बालक को खोजा जा रहा है, फिर ज्ञात हुआ था कि बालक खोज लिया गया है। फिर उस बालक के वध की एक के बाद एक चेष्टाओं के समाचार मिले थे। फिर उसकी अद्भुत और दैवीय शक्ति सुनी थी। एक बार फिर मन हुआ था कि पति को रोक ले, "बस, देव! बस! अब भी समय है—उस ईश्वरीय शक्ति को स्वीकार लो। पुण्य मे दान की शक्ति भी होती है। आपको अभयदान मिलेगा।"

किन्तु कंस? उन्हें समझाना असंभव! उनसे कुछ कहना ऐसे ही है जैसे मदान्ध गज को थामने की मूर्खतापूर्ण चेष्टा की जाये।

बहुत कुछ था जो अज्ञात रह जाता था। पर वह अज्ञात घट रहा है—किसी न किसी रूप-आकार में, प्राप्ति जानती थी। केवल प्राप्ति ही

शरद जोशी

क्यों, कंस भी तो जानते थे। अन्तर था तो मात्र इतना कि कंस उस अज्ञात पर भी वश करना चाहते थे—और प्राप्ति चाहती थी कि उस अज्ञात के प्रति समर्पण करके सब कुछ ज्ञात और सहज कर लिया जाये। उस सहजता में ही शान्ति होती। पर पति कब नहीं माने।

८८

आज जब यह रथ अस्ति और प्राप्ति को लिये हुए मगध-पथ पर दौड़ा जा रहा है, तब वही सब स्मरण आने लगा है। न चाहकर भी सब स्मरण होता हुआ। कितना तो था जो अज्ञात घटता रहा था। केवल विधिरचित सहज की तरह। कंस थे कि उस रचना को ही जय करना चाहते थे। विधाता को जय कर लेना चाहते थे—मूर्खतापूर्ण! बाद में सब कुछ ज्ञात हुआ था किन्तु उस समय तक अस्ति और प्राप्ति सब कुछ खो चुकी थी। ठीक माता देवकी की तरह। पाकर भी खोयी हुई, जीवित होते हुए भी मृतवत्। अस्ति-प्राप्ति के साथ भी यही हुआ। जीवित थी, किन्तु वैधव्य से मृत।

एक गहरा श्वास लेकर प्राप्ति पुनः विचारों से जुड़ गयी। मगध की राह अभी दूर थी और लगता था कि राह ही नहीं दृष्टि के हर कोण में विगत ही बिखरा हुआ है। वह सब जो अज्ञात था—ज्ञात की तरह। अज्ञात—गोकुल! कौन जानता था कि मथुरा के एकदम सिरहाने कंस की आगत मृत्यु पर आनन्दोत्सव किये जा रहे हैं?

गोकुल। वृन्दावन का ग्राम। बहुत बड़ी बस्ती नहीं थी गोकुल में। जो बसे थे, गोप थे। जो गोप नहीं भी थे, वे भी गोकुल के गोप ही कहलाते थे। गोप और गोकुल जीवन-व्यवहार-व्यापार में एक हो चुके थे। उनसे इतर किसी एक का विचार कर पाना असंभव था।

एक तीसरा नाम और था, जो कर्म-धर्म के साथ एकाकार था—

नंद का नाम। नंद बाबा, गोकुल और गोप। लगता था कि एक श्लोक के बोल है। किसी एक के बिना श्लोक सम्पूर्ण नही होता।

सम्पूर्ण गोकुल मे प्रसन्नता व्याप्त थी। वृद्धावस्था मे नन्द गोप को संतान प्राप्त हुई। पिछले कई दिनों से हर्षोल्लास और आनन्द का वातावरण व्याप्त था। पर कौन जानता था कि मथुरा गये हुए वृषभानु एक ऐसा समाचार ला रहे हैं, जिसकी सूचना कोहरे की तरह गोकुल ग्राम के जन-मानस को ढांप लेगी। मन सहम जायेंगे, इच्छाए और आनंद-भावना बर्फीली सर्दी से झुलसकर रह जायेंगे।

गोकुल के मार्ग की ओर बढ़ते हुए वृषभानु का मन रह-रहकर इस विचार से उद्विग्न हो उठता था कि उन्हें अपने परममित्र को ऐसा समाचार देना है, जिसे सुनकर उसके आनंद उपवन जैसे मन में सहसा मरुस्थल बिखर जायेगा। फिर यह मरुस्थल समूचे गोकुलवासियों को ग्रस लेगा। इच्छा होती थी कि कुछ न कहे नन्द से। लग रहा था जैसे वह सब कहकर नंद और यशोदा के ही नही, समूचे गोकुल के प्रति दोष करेंगे वृषभानु। पर न कहने पर अधिक दोष होगा। दोष ही नही, पाप। कारागृह अधीक्षक से मिली सूचना खोखली नही हो सकती थी। फिर वृषभानु को स्मरण है वह स्वर। उस स्वर के साथ-साथ छलछलायी हुई पुतलियां।

वसुहोम ने कहा था, "मित्रवर! केशी पशु की भांति है और महाराज कंस को राजलिप्सा ने पशुवृत्ति दे दी है। यही कारण है कि वे सब अन्धविश्वासी हो गये हैं। इस सीमा तक कि किसी दुष्ट ज्योतिषी के यह कहने पर कि इधर पिछले दस-बारह दिनों के भीतर व्रजभूमि में जनमे सद्यःजात बालकों मे ही उनका कोई काल है, वे सभी शिशुओं का वध करवा डालना चाहते हैं। हो सकता है कि गोकुल में भी ऐसा घृणित चक्र चले। अतः हमारी इच्छा है कि सरलमन नंद बाबा तक यह समाचार पहुंचा देना कि वह सावधान रहें। अपने क्षेत्र के सभी शिशुओं की रक्षा करें।"

हतप्रभ सुनते रहे थे वृषभानु। क्या सचमुच ऐसा संभव है? तर्क भी करना चाहा था। लगा था कि यह सब अस्वाभाविक और असहज है।

कहा था, "विश्वास नही होता, अधीक्षक ! महाराज ऐसा मूर्खतापूर्ण आदेश दे सकते हैं ?"

"दिया नही है, भाई ! पर महाराज को हम जानते हैं—उनके मुह से कोई भी अस्वाभाविक निर्णय घोषित हो सकता है, वह कोई भी असहज निश्चय कर सकते हैं।" वसुहोम ने कहा था, "इस समय केवल यही सूचना मिली है कि किसी दुष्टबुद्धि ने कलुष से प्रेरित होकर उनको अशान्त कर दिया है। उत्तेजना और आवेश मे मयुराधिपति क्या कह डालें, क्या कर दें, निश्चित नहीं है। इसी कारण सभावना बतला रहा हूं मैं। हो सकता है कि वह ऐसा असहज आदेश भी दे बैठें ! सुना है कि नंद गोप को हाल मे ही संतान सुख मिला है। हम नही चाहते कि शान्त-सरल नद बाबा को महाराज के किसी आदेश या निर्णय के कारण व्यर्थ ही दुख और क्लेश भोगना पड़े। सुना है वह बहुत शान्त स्वभाव व्यक्ति हैं। उनकी पत्नी भी बहुत ममतामयी हैं।"

वृषभानु हड़बडाये हुए-से खड़े रहे थे। ऐसे जैसे शिला बन गये हों। सुना और समझा सब कुछ, किन्तु तुरन्त कोई प्रतिक्रिया नही दे पाये। या यों कि प्रतिक्रियाहीन हो रहे ! प्रतिक्रिया के नाम पर केवल घबराहट। इस घबराहट ने इतना असयत कर दिया था कि संयम के नाम पर शिला हो गये।

कटक ने उन्हे हौले से झकझोरा था, "क्या हुआ, बन्धु ?"

"हां ?···कुछ नही। कुछ भी तो नही।" हड़बड़ाकर वृषभानु ने कहा था। जानते थे कि ऐसा कहने पर भी न उनका अपना स्वर संयत है, न शरीर, न भाव।

वसुहोम ने कहा था, "सहज हो जाइए और शान्त होकर इस सूचना को नन्द बाबा तक पहुंचा दीजिए। आपका उपकार होगा।"

सहेज लिया था स्वयं को। बहुत चेष्टा के बाद सहेज सके, किन्तु सहेज गये। बोले, "आपका आभार अधीक्षक ! मैं तो विचार भी नही कर सकता था कि राजनिर्णय ऐसी क्रूरता से भरे हो सकते हैं !"

"यह राजनिर्णय नही है वृषभानु !" कंटक ने कहा था, "यह मनुष्य की क्षुद्रता का सबसे घृणित उदाहरण है।"

वृषभानु ने देखा था—दण्डाधीक्षक का चेहरा संवाद के शब्दों के साथ ही विकृति और घिन से भर उठा है। कहा, "चलता हूं…आप सब आश्वस्त हों, यह सूचना पहुंचा दूंगा।"

"सूचना नहीं है, मित्र !" वसुहोम ने उन्हें पुनः समझाया, "केवल आशंका है कि ऐसा हो सकता है। आवश्यक नहीं है कि ऐसा ही हो, पर सतर्कता बरतने में हानि नहीं है।"

"जैसी आपकी इच्छा।" वृषभानु ने उत्तर दिया, विदा हो गये। जाते समय एक दृष्टि कंटक और वसुहोम दोनों के ही चेहरों पर डाली थी, लगता था कि वे अधिक रहस्यमय हो उठे हैं।

▭▭

गोकुल पहुंचते-पहुंचते गोधूलि वेला हो गयी। पशुओं के रम्हाने का स्वर दिशाओं में गूंज रहा था। वृषभानु की इच्छा थी, निवास तक लौटने की प्रसन्नता अनुभव करें, किन्तु लगता था—जिस दायित्व को मथुरा से ओढ़े चले आ रहे हैं, उसने उन्हें असहज ही नहीं असामान्य कर दिया है। गंभीरता शरीर में बोझ की तरह बिखर गयी है। यह बोझ गहन चिन्ता और कष्ट से भरा हुआ है। मुक्ति उस समय तक संभव नहीं, जब तक कि शीघ्रातिशीघ्र समाचार नन्द गोप तक न पहुंचा दें। किन्तु यह समाचार पहुंचाकर भी क्या वह सहज हो लेंगे? बोझ मुक्त हो जायेंगे? असंभव। इसलिए असंभव, क्योंकि कहीं-न-कहीं उन्हें स्वयं भी लग रहा है जैसे नन्द और यशोदा की चिन्ता उनकी अपनी है। मित्र की पीड़ा को भला अपनी पीड़ा से कैसे बिलग कर सकते हैं वृषभानु ? या यह कि दूसरे की पीड़ा और दूसरे के सुख में संलग्न न हो पाना अमानवीय होता है—केवल इसी कारण वृषभानु स्वयं को सूचना की उस किसी भी प्रतिक्रिया से अलग नहीं कर पा रहे हैं जो समाचार मिलने पर नन्द को होगी ?

यही कुछ सोचते कब, किस समय नन्द गोप के द्वार पर जा खड़े हुए थे—ज्ञात नहीं हुआ। लगा था कि वेसुध-से चले आये हैं। सुधि आयी तब, जब आंगन में चारपाई पर बैठे नन्द ही द्वार पर आ खड़े हुए, "अरे, वृषभानु तुम? कब आये मथुरा से? लगता है, चले ही आ रहे हो?"

वृषभानु तुरन्त कुछ उत्तर नहीं दे सके। गूसा ही नहीं। मन कहीं कुछ इतना उलझा हुआ था कि उसी से नहीं सुलझ पाये थे। हकबकाये-से खड़े रह गये।

नन्द ने कन्धे पर हाथ रखा, बोले, "भीतर आओ। राह में गरमी रही होगी।" फिर भीतर की ओर खींचते हुए-से पुकारने लगे थे, "अरे, यशोदा! तनिक छाछ तो लाना। वृषभानु मथुरा होकर लौटे हैं।"

वृषभानु सहज हो चुके थे इस बीच। कहा, "न-न, रहने दो। वह तो यूं ही इधर से निकला तो सोचा तुमसे भेंटता चलूं। तनिक सुस्ता भी लूंगा।"

यशोदा भीतर से घूंघट का एक पल्ला लिये हुए आयी। पात्र में छाछ था। लाकर वृषभानु की ओर बढ़ा दिया। धूप में लम्बी यात्रा करके लौटे वृषभानु ने मित्र-पत्नी की ओर देखा। एक गहरा श्वास लिया। वसुहोम के शब्द जैसे भाले की नोकों की तरह अन्तस् में लग उठे। गहरे, कुरेदते हुए।

यशोदा छाछ का पात्र रखकर लौट गयी थी। वृषभानु ने होले से पात्र उठाया, होंठो से लगा लिया। सोचने लगे—बात कहां से प्रारम्भ करें। सहसा सतर्क हुए। वह सब यशोदा सुनें—ठीक नहीं होगा। कहना चाहते थे नन्द से कि उठें, उनके साथ चलें, पर नन्द ने बात प्रारम्भ कर दी। पूछा, "कुछ व्यग्र दीख रहे हो वृषभानु? क्या बात है?"

"कुछ नहीं, यूं ही। राह में बहुत गर्मी थी।" वृषभानु ने बात टाल दी। छाछ का पात्र खाली करके रख दिया, फिर उठने को हुए। नन्द ने कहा था, "तनिक विश्राम कर लो, मित्र! उस आसन पर लेट जाओ।"

"नहीं।" वृषभानु बोले, फिर उस दिशा में देखा, जिधर अभी-अभी यशोदा गयी थी—फुसफुसाकर कहा, "सुनो, तुम मेरे साथ चलो।'

नन्द ने चकित होकर उन्हें देखा। पूछा, "कहां?"

वृषभानु उठ चुके थे। नन्द की बाह थामी, बोले—"आओ तो!"

"किन्तु···" नन्द को अवसर नहीं मिला। वृषभानु उन्हें उसी तरह खींचते हुए-से घर के बाहर की ओर ले गये, जिस तरह कुछ देर पहले उन्हें नन्द घर में ले आये थे। द्वार के बाहर आकर वृषभानु ने कहा था,

"तुमसे आवश्यक बात करनी है, नन्द ।"

▭▭

कौन-सी आवश्यक बात है या क्या हो सकती है ? यह सब जानने-पूछने का अवसर ही नहीं दिया था वृषभानु ने । अपने घर और बस्ती से विपरीत दिशा की ओर ले गये थे नन्द को ।

और नन्द भौचक्के । नासमझ भाव से उनके पीछे-पीछे चलते हुए । बुदबुदाये भी थे बीच मे "अरे, कहां लिये जा रहे हो ?"

"आओ तो !" वृषभानु उसी तरह रहस्यमय बने रहे ।

वे एकांत में आ गये थे । वृक्षों क झुरमुट तक । सन्ध्या उतरने लगी थी । उसी के साथ हल्का अंधेरा भी आसमान पर बिखर आया था । यह अंधेरा नीचे गिरता हुआ । वे धीमे-धीमे एक-दूसरे के लिए छाया बनते जा रहे थे । वृषभानु एक स्थान पर जाकर रुके तो नन्द ने पूछा था, "तुम सहज तो हो ? यहां किस लिए लाये हो मुझे ?"

"बतलाता हूं···बैठो ।"

वे बैठ गये । वृषभानु इस बीच निश्चय कर चुके थे कि क्या कहेंगे, किस तरह प्रारम्भ करेंगे । वही किया । कहा, "सुनो, बात ऐसी थी कि कन्हैया की माता के सामने कहना उचित न होता, अत. तुम्हें यहां लाया हूं ।"

नन्द सहसा गम्भीर हो गये । अनुमान कर पा रहे थे कि वृषभानु यूं ही उन्हें एकांत मे नही खींच लाये होंगे । कोई-न-कोई कारण होगा, किन्तु यह कारण होगा—कल्पना नही की थी । मन शंकाग्रस्त होकर भीतर-ही-भीतर प्रश्न करने लगा था नन्द से—क्या वृषभानु कन्हैया के बदलाव की घटना जान चुके हैं ? या फिर कोई अन्य बात है ? पर ऐसी क्या बात हो सकती है जो कन्हैया की माता के सामने न कही जा सके ? निश्चय ही कन्हैया से सम्बन्धित कोई बात होगी । किन्तु कन्हैया से सम्बन्धित बात कन्हैया के बदलाव के अतिरिक्त क्या हो सकती है ? चिन्ता ने मन भर दिया ।

वृषभानु ने कहा, "मथुरा में कारागार अधीक्षक वसुहोम से भेंट हुई

थी हमारी। उन्होंने तुम तक एक महत्त्वपूर्ण सूचना पहुंचाने को कहा। परिचित हो तुम उनसे ?"

"हा-हा,···मित्र हैं मेरे।" नन्द बोले। आगे जान-बूझकर नही कहा। कुछ कहना अपने-आप को उजागर करना होगा। इस समय केवल वृषभानु से वृषभानु की बात सुनना ही उचित।

वृषभानु ने कहा, "एक सकट व्रजभूमि पर आ पहुंचा है। उसी के लिए वसुहोम ने तुम्हे सजग और सावधान रहने को कहा है।"

"क्या ?···" नन्द ने प्रश्न किया।

वसुहोम का कहा ज्यों-का-त्यों कह सुनाया था उन्हें। किस तरह भेंट हुई, किस तरह उपाधीक्षक उन तक ले गया, किस तरह बात प्रारम्भ हुई, फिर क्या-क्या तर्क-वितर्क हुए, सब। नन्द ने सुना, जबड़े कस लिये। बात निश्चय ही कन्हैया से सम्बन्धित थी, किन्तु उस तरह नही—जिस तरह नन्द ने विचार किया था। बोल नही सके। चिन्ता और पीड़ा ने कुछ अस्त-व्यस्त कर दिया था उन्हें। उससे कही अधिक इस विचार ने मन को मथुराधिपति के प्रति घोर घृणा और वितृष्णा से भरा कि वह असख्य शिशुओं का वध करने जैसा निर्णय ले सकते हैं।

वृषभानु ने पूछा था, "क्या सोचने लगे तुम ?"

"कुछ नही, मित्र !" नन्द ने उत्तर दिया। आवाज भर्रायी हुई थी उनकी, "सोच रहा हूं कि क्या कोई मनुष्य वह सब कर सकता है जो कस से आशकित है ?"

वृषभानु ने कहा, "मैंने भी यही पूछा था वसुहोम से···किन्तु उसने कहा कि यादवेन्द्र के लिए ऐसा करना आश्चर्यजनक नही है।"

नन्द चुप रहे।

वृषभानु बोले थे, "जानता हूं कि तुम विश्वास नही कर पा रहे हो, किन्तु मैं भी प्रारम्भ मे विश्वास नही कर पाया था, किन्तु उपाधीक्षक के दिये तर्क से सहमत हुआ हूं। उसी तर्क के कारण विश्वास भी करता हूं कि ऐसा हो सकता है।"

"क्या तर्क था उनका ?" नन्द ने यांत्रिक स्वर मे पूछा।

"उनका तर्क था कि भयातुर और कायर मनुष्य कोई भी अमानवीय

निर्णय ले सकता है। ठीक उस मदान्ध व्यक्ति की तरह जो सत्ता, शक्ति, सम्पन्नता और भाग्य की प्रबलता के वशीभूत होकर अमानवीय निर्णय लेता है। दो चरम एक ही स्थिति पर पहुचकर एक ही स्थिति को प्राप्त होते हैं।"

नन्द ने सुना। शान्त रहे·· देर तक उस अन्धकार को देखते रहे, जिसने प्रकृति का सम्पूर्ण सौन्दर्य ग्रस लिया था। ठीक उसी तरह जिस तरह इस आशंका ने मन का सारा सुख और प्रसन्नता ग्रस ली।

थोड़ी देर दोनों बैठे रहे थे, फिर उठ पड़े। राह मे नन्द बाबा ने निर्णय सुनाया था, "इस सम्बन्ध मे गोकुल के प्रमुख व्यक्तियो से चर्चा करनी होगी।"

वृषभानु ने सुना। समझने का प्रयत्न किया, फिर समझा। संभवत: नन्द गोप गोकुलवासियो से सार्वजनिक चर्चा करके इस आशंकित के प्रति विचार-विमर्श करना चाहते हैं। पूछा, "क्या यह ठीक होगा नन्द ?"

"निश्चय ही यह उचित होगा।" नन्द गोप ने उत्तर दिया था, "मुझे विश्वास है कि गोकुल में अब तक कलुष नही है।"

"किन्तु···" वृषभानु ने कहना चाहा, पर चुप हो रहे। नन्द बरसों से गोकुल के मुखिया हैं। मथुरा के राजपरिवार मे भी इसी कारण प्रभावी हैं। उनके विचार और विश्वास को तर्क-वितर्क से आहत नही करेंगे वृषभानु। उन्हें जितना करना चाहिए था, कर चुके। यही उनका अधिकार था, यही कर्तव्य, यही उनसे वांछित।

नन्द गोप को उनके निवास तक छोड़कर वृषभानु अपने घर चले गये थे। थोड़ी देर बाद ही सूचना मिल गयी थी उन्हे—"नन्द गोप ने अर्ध-रात्रि मे सभी गृहस्वामियों को एक विशेष सभा में आमंत्रित किया है।" उनके लिए भी आमन्त्रण था।

▭▭

नन्द गोप ने जो कुछ कहा, गोकुलवासियों ने शान्त होकर सुना। फिर नन्द ने सबका विचार पूछा, "यदि ऐसा कुछ होता है तब क्या करना उचित होगा ?'

शरद जोशी

कुछ पल सन्नाटा रहा। फिर एकत्र भीड़ से एक स्वर उठा था, "गोकुल में किसी का जन्म ही नही हुआ, अतः विचार का प्रश्न कहां उठता है?"

एक अन्य स्वर आया, "किन्तु यशोदासुत इसी बीच जन्मा है।"

पहले स्वर ने तुरन्त मुडकर पूछा था, "यशोदासुत जन्मा है? हमे तो ज्ञात नही। आपमे से किसी अन्य को ज्ञात है क्या?"

एकसाथ स्वर उठे थे, "नही! ऐसी तो कोई बात नही। यशोदासुत? विचित्र बात है। यशोदा के बेटा भी हो गया और ग्रामवासियों को पता नही चला! आश्चर्य!"

समवेत हसी हुई। फिर एक आवाज आयी, "इससे भी अधिक अचरज की बात तो यह है गोप बन्धुओ, कि यशोदा के पुत्र हुआ और यशोदा को ही ज्ञात नही।"

एक बार पुनः ठहाके लगे। शंकित मन प्रश्न करने वाला गोप बैठ गया। ग्रामवासियों ने अपना सामूहिक निर्णय गोप को सुना दिया था, "हम सबका यही विचार है कि गोकुल में इस बीच कोई शिशु नही जन्मा, और गोकुल के बालकों तक ऐसी कोई सूचना नही है।"

सबने एकमत सहमति व्यक्त की थी। वृषभानु चुपचाप सुनते रहे। सहमति उन्होंने भी व्यक्त की थी, किन्तु मन सहम से भरा हुआ था। ईश्वर न करे, किसी तरह रहस्य कंस या उसके अधिकारियों तक पहुंचे। सम्पूर्ण गोकुल पर विपदा टूट पड़ेगी किन्तु सार्वजनिक स्वरों के बीच एक अकेली आवाज उठाना अर्थहीन लगा था उन्हें। चुप हो गये।

देर रात्रि तक कंस और कस के शासन को लेकर गोपों के बीच कटु आलोचनाएं होती रही, फिर सब अपने-अपने निवास पर गये। निश्चय कर गये थे—परिजनो को आशंकित अनिष्ट के प्रति सावधान कर देंगे। उस रात गोकुल के किसी घर में ठीक तरह कोई सो नही सका था। सार्वजनिक सभा से उठकर ग्रामवासी परिजनों से बातें करते रहे थे। वृषभानु ने बरसाना गांव में स्थिति संभाली।

. ८८

नन्द गोप सारी रात जागते रहे थे। जागती यशोदा भी थी, किन्तु इस जगाहट में अन्तर था। यशोदा सारी रात मातृत्व की पुलक से भरी-भरी जागती। कभी शिशु कान्हा के कोमल-कोमल चरण हिलते, कभी लगता कि वह एक गुदगुदाहट और आनन्द की शब्दहीन अभिव्यक्ति बनकर सीने से आ लगा है'''बहुत बुरी आदत थी बालक की। रात देर गये तक सोता न था। थोड़ी देर सोता, फिर जाग जाता। यशोदा पलकें मूंदती और बालक के किसी-न-किसी करतब से तंग आकर जाग जाती। किसी बार लगता कि जंघा पर नन्हे-नन्हे पैर मार रहा है, किसी बार बिलकुल बगल से सटा हुआ स्तन से खेलने लगता। झुंझलाकर देखती और सारी झुंझलाहट गुम जाया करती। कान्हा बड़ी-बड़ी गोल आंखों से शरारत-भरी मुसकान में नहाया हुआ उन्हें ही देख रहा होता। ऐसे जैसे वह यशोदा की झुंझलाहट का आनन्द ले रहा हो। प्यार से कहती, "दुष्ट ! सो जा ! सो जा ! सो ना ! अच्छा, बाबा ! मैं तुझसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं, सो जा !"

ऐसा कभी नहीं हुआ था कि माता की इस नेह-भरी बुदबुदाहट के बीच नन्द बाबा बोल पड़ें। पर उस रात हुआ। नन्हे कान्हा को इसी तरह निवेदन करके सुलाना चाहती थीं कि नन्द बाबा करवट बदल-कर बोल पड़े थे, "क्यों, क्या कान्हा अब तक सोया नहीं ?"

"हां।" यशोदा ने उत्तर दिया, किन्तु व्यग्र होकर पूछा, "आज तुम इस समय तक जाग रहे हो ?"

"ऐसे ही—नींद नहीं आयी।" नन्द बाबा को लगा कि बोलकर ठीक नहीं किया है। यशोदा का कोमल मन जानते हैं। तनिक-सी बात पर ही चिन्तित हो उठेंगी। कुरेदन-भरे दस प्रश्न कर डालेंगी।

वही हुआ—यशोदा बड़बड़ाकर प्रश्न कर बैठी, "क्या बात है !"

कई घण्टों की चिन्ता और मन के भीतर हुई उलट-पलट ने सिर दुखा दिया था नन्द का। उस तरह सहज होकर उत्तर नहीं दे सके भार्या को। कहा, "हां, ठीक है। तुम सो जाओ।"

उत्तर के संक्षिप्त रूप और स्वर की गरमाहट ने यशोदा को अ

ही चिन्ताग्रस्त कर डाला। कान्हा को छोड़कर पलंग से उठ बैठीं, "क्या बात है? मन तो ठीक है ना तुम्हारा?"

नन्द झुंझला गये, "कहा ना, ठीक है। सब ठीक है। अब तुम भी सो-ओ।"

सकुचा गयी यशोदा। स्वर रुंआसा हो आया। पूछा, "इस तरह चिन्तित तो तुम्हे कभी देखा नही?"

"नही देखा तो क्या हुआ?" नन्द बोले—स्वर पूर्वापेक्षा ज्यादा ही रुखाई से भर गया था, "अब तो देख रही हो। सो जाओ।"

लेट गयी गहरा श्वास लेकर। कान्हा अब भी हाथ-पैर मार रहा था। पर लगा कि उसके स्पर्शों ने प्रभावहीन कर दिया है। सुख-दुख कुछ भी अनुभव होना बन्द हो गया था। लग रहा था कि नन्द बाबा के असहज व्यवहार के अतिरिक्त अन्य कोई प्रभाव लेना-समझना यशोदा के लिए सहज नही रह गया है। मन फिर प्रश्न से भर आया था। लगा कि होंठो पर आकर शब्द थमे रह गये हैं—कहना चाहती थी, "क्या हुआ?" पर झूलते रह गये थे शब्द। नन्द बाबा तक उछल नही सके। पति की अस्त-व्यस्तता ने बहुत आहत कर डाला था उन्हे।

नन्द ने करवट बदली। यशोदा भी करवट बदलकर उसी ओर देखती रही। दीपक का प्रकाश धीमा और धीमा होता जा रहा था। रात क्रमशः क्षीण होती हुई और उसके साथ-साथ यशोदा का मन भी रीतता हुआ।

नन्द ने पुनः करवट बदली थी। चादर के भीतर मुह छिपाये यशोदा ने धीमे-से पलकें उठाकर देखा था उन्हें। वह उस समय भी जाग रहे थे। आश्चर्य! पलकें पुनः झपकी। जाग रहे हैं या सो गये? आंखें बन्द कर रखी थी उन्होने। किन्तु यशोदा ने पहचान लिया था कि सोये नही हैं। नन्द से बाल्यावस्था का साथ रहा है उनका। शरीर की हर मुद्रा, स्वर का हर आरोह-अवरोह, अपने-आप की तरह जानती-पहचानती है। उनसे छिपाव करना या अभिनय कर पाना असम्भव है। और यशोदा समझ गयी थी कि किसी कारण मन उलझाव से भरा हुआ है। रात बिताने और यशोदा को सहेजे रखने-भर के लिए सोने का अभिनय किए

हुए हैं।

एक बार पुनः होंठ फड़कने को आकुल हुए। वही प्रश्न से सुलगते हुए—क्या हुआ है? तुम ऐसे अशांत क्यों हो? बतलाओगे नहीं मुझे? पर चुप के निर्देश ने अनचाहे ही उन्हें प्रश्न की सुलझान सहने को बाध्य कर दिया। होंठों पर जीभ फिराकर शांत रह गयी।

रात बीत गयी थी। प्रतिदिन की तरह दिनचर्या से जुड़ गये थे पति-पत्नी। नन्द सदा की तरह उठकर यमुना तट की ओर निकल गये और यशोदा गो-सेवा में रत हुईं। बीच-बीच में बालक कन्हैया को सहेजती-सवारती हुई। रात्रि-जागरण ने मन-शरीर सभी को गहरी थकन से भर डाला था, किन्तु यशोदा की थकन अधिक अशांति से भरी हुई। कारण था पति को लेकर चिन्ता। मन रह-रहकर खौलते पानी की तरह उबलने-उछलने लगता···पूछें, जानें···किन्तु वह बतलायेंगे? रात कितने असहज हो कर छपटने लगे थे!

▭▭

किन्तु पूछना होगा। पूछे बिना यशोदा शान्त नहीं हो सकेंगी। जानती हैं कि उनके सरल निर्णय या विचार से नन्द की समस्या का हल नहीं होगा—यों भी नन्द ठहरे गांव के मुखिया। बहुत बार उस कठोरता से काम लेना पड़ता है उन्हें जो यशोदा के नारी मन के लिए असहज है—असह्य भी। ऐसी स्थिति में पति की किस समस्या में वह कितनी सहायक हो सकेंगी—निश्चित नहीं। इसके बावजूद मन बेचैन है। जाने बिना सहजता असम्भव। निश्चय कर लिया था कि पति के लौटते ही उनसे पूछेंगी, "क्या हुआ था रात को? बहुत बेचैन रहे तुम?"

ज्ञात नहीं कि वह क्या कहेंगे? पर यशोदा जान सकीं तो सहज होंगी। लगता है कि पति-पत्नी में से किसी एक का चुप समूचे घर-जीवन को जीवत होते हुए भी मृतभाव से भर देता है। इस भाव से ही मुक्ति चाहती हैं यशोदा।

प्रतीक्षा करने लगी थीं नन्द गोप की। पर बहुत समय बीता, वह नहीं आये। यशोदा का मन और असहज हो उठा। अधिक बेचैनी से

भर उठी। प्रतिदिन की चर्या मे यह एक और अवरोध आया था। लगा कि कोई बड़ा कारण है। भीतर का प्रश्न अधिक गहन हो उठा। अधिक कुरेदता हुआ। अधिक नुकीला। कितनी ही बार बाहर के द्वार तक आतीं। तनिक-सी आहट पाते ही चौंककर देखती दरवाजे की ओर। यांत्रिक भाव से दूध बिलोया, माखन उतारा। रोज इसी काम में कितना सुख मिलता था उन्हें! आनन्द आता था। किस क्षण रई मथने मे घूमती और उदधि दूध की सतह पर उतराता, लगता कि छोटा-सा आकाश उनके घड़े में भरने लगा है···मीठा, सुखदायी और बादलों की तरह कोमल आकाश। पर आज लगा कि आकाश नही है—चिन्ताओं की एक धुंध है। भारहीन होते हुए भी भारयुक्त। इससे उस समय तक मुक्ति नहीं मिलेगी, जब तक कि वह पति से उनकी चिन्ता का कारण जान न लें।

देर बाद लौटे थे नन्द। धूप माथे तक चढ़ आयी थी। उस दिन न तो वह दूध पीकर गये थे, न माखन लिपटी रोटी का कलेवा किया था उन्होंने। हर काम नियम के विरुद्ध। ऐसा क्या हो गया था? वे कन्धे का अंगोछा हौले से चारपाई पर रखकर बरामदे मे ही लेट गये थे। बांह का तकिया लगा लिया था। पलकें मूंद लीं। चेहरा उसी तरह तनाव-ग्रस्त रहा।

यशोदा धीमे-धीमे चलती हुई उनके पास आ खड़ी हुईं। पति की मनःस्थिति ने उन्हें भी गहरी चिन्ता और अशांति से भर दिया। साहस जुटाकर पूछा, "सुनो।"

"हूं?" वह गुनगुनाते स्वर मे बोले। पलकें उसी तरह बन्द रहीं। शरीर उसी तरह निश्चल।

"क्रोध न करो तो एक बात पूछूं?" यशोदा ने मीठे पर सकपकाये स्वर मे प्रश्न किया।

"कहो।" नन्द ने पलकें खोल लीं।

"रात तुम सोये नही···जानती हूं···" यशोदा नजरें चुराकर कह गयीं, "आज भोर से भी तुम्हें बहुत चिन्तित और व्यग्र पा रही हूं···क्या बात है—बतलाओगे नही?"

नन्द ने गहरा श्वास लिया। नियम-कर्म की नियमितता से गठित संयत शरीर था उनका। आयु बढ़ रही थी, किन्तु स्वर, दृष्टि, शरीर किसी पर भी उसी तरह प्रभावी नहीं हो पा रही थी, जिस तरह हो जाती है। चारपाई से उठकर पत्नी को देखने लगे। न चाहते हुए भी पुतलियों की बेचैन थिरकन को थाम नहीं सके। कहा था, "मैं स्वयं तुम्हें बतलाना चाहता था। रात्रि को ही बतला देना चाहता था, पर समझ नहीं पा रहा था, किस तरह बतलाऊं। बार-बार संकोच होता था।"

"मुझसे संकोच ?" यशोदा चकित हुईं। फिर जी हुआ हंसे, ठिठोली करके कह दें, "तुम पुरुष इतने संकोचग्रस्त कब से हो गये ?" किन्तु मन थाम लिया। इस क्षण ऐसी बात करके पति को व्यर्थ ही आहत नहीं करेंगी।

नन्द ने कहा, "हां, यशोदा। बात ही ऐसी है।" उन्होंने होंठों पर जीभ फिरायी। एक दृष्टि पत्नी को देखा, फिर चुप हो रहे।

"क्या बात है ?"

"पहले एक वचन दो।" नन्द ने पूछा।

"क्या ?" यशोदा ने चकित होकर कहा, "तुम वचन क्यों मांग रहे हो मुझसे ? तुम्हें तो आज्ञा देने का अधिकार है।"

"है, किन्तु बात ऐसी है जिसके कारण तुमसे वचन लेने को बाध्य हुआ हूं।" नन्द ने कहा, "तुम्हारा स्नेहिल, कोमल और सरल मन जानता हूं ना—इसी कारण। डर लगता है कि कहीं तुम अपने स्वभाव से बाध्य होकर रोने-धोने न लगो।"

अब यशोदा की चिन्ता बढ़ी। ऐसी क्या बात हो सकती है, जिसमें यशोदा को उतना आहत होना पड़े कि रुलाई आ जाये ? आश्चर्य और बेबसी से होंठ खुले रह गये उनके। पति को टकटकी बांधे देखती रहीं।

"वचन दो।" नन्द उन्हें ही देख रहे थे।

"किन्तु…"

"केवल इतना चाहता हूं कि स्वयं को वश में रखोगी।" नन्द ने कहा।

५८ : कालिन्दी के किनारे

यशोदा ने तनिक सोचा, फिर दृढ़ता बटोरी। बोली, "ठीक है। यही होगा। अब कहो।"

"मेरे ही नही, किसी के भी सामने स्वयं को वश में रखोगी।" नन्द ने कहा, "यह अभिनय कठिन होगा यशोदा, पहले विचार कर लो। तुम्हारा स्वभाव जानता हूं, अतः तुमसे विशेष रूप से कह रहा हूं। तुम्हारे लिए बहुत कठिन होगा। तुम और माताओ जैसी नहीं हो ना ?"

यशोदा पुनः हक्की-बक्की हुई, फिर वज्रभाव से उत्तर दिया, "तुम कह डालो। तुम्हारी आज्ञा के लिए मैं काल-समय पर भी संयम बरत सकती हूं। मेरी सरलता देखी है तुमने—मेरा साहस देखने का अवसर ही कहा मिला है तुम्हे ? कहो।"

"तो सुनो···" नन्द ने कहा, "यहां बैठो और ध्यान से सुनो।"

यशोदा चारपाई की पाटी के पास पति के पैरों मे बैठ गयी। दृष्टि चेहरे की ओर ठहरा दी। प्रतीक्षा करने लगी उस रहस्य की, जिसने कई घण्टो तक व्यग्रता से मन को उलीचे रखा था।

नन्द ने कहा, "कल सन्ध्या वृषभानु मथुरा से आये थे ना ?"

"हां।" यशोदा बोली। ठीक उस बालक की तरह जो कहानी सुनते हुए 'हुंकारा' लगाता है।

"वृषभानु एक बुरा समाचार लाये हैं।" नन्द ने कहा, फिर बतला दिया कि किस तरह ज्योतिषियों के गणित चक्र ने कस की दुष्टबुद्धि मे यह बात बिठा दी है कि गत दस दिनों के भीतर जन्मे शिशुओ मे ही कोई एक उसका काल है। और कंस ने आज्ञा दी है कि दस दिनों के भीतर-भीतर जन्मे हर शिशु का वध कर दिया जाये।

"हे राम !" यशोदा हतप्रभ हो गयी थी। उससे कही अधिक आहत। कान्हा भी तो इन्ही दस दिनो मे जन्मा है। आज ठीक ग्यारह दिन का हुआ। न चाहकर भी आंखे छलछला आयी थी उनकी। हकलाते हुए पूछा था, "अब क्या होगा, गोपश्रेष्ठ ?"

"वही होगा जो विधाता की इच्छा होगी।" नन्द बोले थे, "मैंने और गोकुलवासियो ने निर्णय लिया है कि ऐसा अवसर आया, तब सब कहेंगे—गोकुल मे किसी शिशु का जन्म नही हुआ। तुम भी संयत

रहना। व्याकुल हुईं तो अहित का भय है।"

यशोदा ने जबड़े कस लिये। लगा था कि विचित्र-सी शक्ति उनके भीतर जनम आयी है। कहा, "चिन्ता न करो। मुझे सुदिन भोगने के साथ-साथ परमात्मा ने दुर्दिन सहने की भी शक्ति दी है।"

नन्द चकित होकर पत्नी को देखने लगे थे। आश्चर्य! लग रहा था कि जिसे देख रहे हैं वह कोमलमना उनकी पत्नी नहीं है—पाषाण-हृदया कोई शक्ति है। यशोदा की दृष्टि बदली हुई थी, स्वर, चेहरा, यहां तक कि समूचे भाव भी अजब-सी दृढ़ता संजोये हुए किसी भित्ति-चित्र-से दीख रहे थे—जिस पर केवल अंकन दीखता है, एकमात्र भावना नहीं।

८

सम्पूर्ण ग्राम में सहज जीवनचर्या चलती रही थी। अन्तर कुछ था तो केवल यह कि हर दिन की तरह इस दिनचर्या में आह्लाद नहीं था। केवल यांत्रिकता थी। बालक यमुना-तट पर खेलते रहे थे। स्त्रियां गृहकार्य में जुट रही थीं। गोप-बालाएं सहम-संकोच से भरी रही थीं और पुरुष पशु-सेवा में व्यस्त रहे थे। पशु भी जैसे चुप्पी संजोए हुए। सम्पूर्ण ग्रामजीवन उत्साहहीनता से ग्रस्त। ऐसे जैसे नयी, कोमल सद्यः जन्मा कोंपलों पर तुषार बरस पड़ा हो। इस तुषार को केवल ग्रामवासी ही जानते थे। अन्य कोई नहीं। उन सैनिकों के लिए तो बिलकुल ही अनजाना था यह भाव, जो केशी की आज्ञानुसार कर्तव्य की यांत्रिकता से बंधे हुए खड्ग लिये धीमे-धीमे सम्पूर्ण व्रजक्षेत्र में बिखर चुके थे। अनेक ग्रामों में अनेक दुधमुंहे शिशुओं का वध किया गया। माता-पिता, सगे-सम्बन्धियों को रोते-बिलखते छोड़कर क्रूरकर्मा सैनिकों का जत्था एक ग्राम से दूसरे ग्राम की ओर बढ़ता गया।

एक जत्था आया गोकुल की ओर। सबसे पहले बालकों से भेंट हुई थी उनकी। वे यमुना तट पर खेल रहे थे। सैनिक पास आये तो भी बालकों ने खेलना जारी रखा।

नायक ने साथियों को रुकने के लिए कहा, स्वयं अश्व को रागाम

थामी। बालकों के बीच रुककर पूछा, "सुनो। यहां के मुखिया नन्द गोप ही है ना?"

एक बालक आगे बढ़ आया, "हां, हैं तो···क्या काम है तुम्हें?"

'हमें उनसे भेंट करनी है।"

"उस झुरमुट के पार बस्ती में प्रवेश करते ही तीसरा, सबमें सुन्दर भवन उन्हीं का है—चले जाओ।"

बालक पुनः खेलने के लिए मुड़ा। पर सेनानायक हटा नहीं, घोड़े की रास थामे उसी तरह खड़ा रहा। बालकों ने प्रश्नातुर कभी सैनिकों की ओर कभी एक-दूसरे को देखा, फिर उनमें से सबसे बड़ी आयु का बालक बोल पड़ा, "अब स्थान छोड़ो ना। हम लोग खेलेंगे।"

नायक मुसकराया, बोला, "देखता हूं तुम सबसे समझदार बालक हो। इसी ग्राम के हो ना?"

"हां—हैं।"

"बतलाओ तो, क्या तुम्हारे गांव में पिछले दिनों किसी बालक का जन्म हुआ है?"

"बालक का जन्म?" बड़ा बालक चकित हुआ—इस तरह जैसे सवाल ही बेतुका लगा हो उसे, फिर साथियों की ओर हंसकर बोला, "सुनो मित्रो! सेनानायक पूछते हैं कि इस ग्राम में पिछले दिनों कोई बालक जन्मा क्या?" फिर वह नायक की ओर मुड़कर उपहास से देखते हुए बड़बड़ाया, "अगर बालक ही न जन्मे होते तो हम कहां से आये? महाराज कंस के कोषागार से?" सहसा वह ठहाका मारकर हंसा। अन्य बच्चे भी हंसने लगे।

नायक सिटपिटा गया, फिर क्रोध आया उसे। चीखकर कहा, "चुप हो जाओ। मैं केवल यह पूछ रहा हूं कि इधर पिछले दस-बारह दिनों में कोई बालक किसी घर में जन्मा है क्या?"

"अच्छा-अच्छा···पिछले दस-बारह दिनों में?" बड़े बच्चे ने समझते हुए कहा।

"हां।"

बालक ने होंठ भींचे जैसे कुछ याद किया, फिर बड़बड़ाया, "दस-

बारह दिनों में तो नहीं—हां, तीन महीने पहले वह जो कणिक खड़ा है ना···" उसने साथ के एक बच्चे की ओर संकेत किया, "इसके भाई अवश्य हुआ है।"

"यानी दस-बारह दिनों के भीतर गोकुल में कोई बालक नहीं जन्मा?" नायक ने जैसे चकित होकर प्रश्न किया। अपने साथी सैनिकों को देखा। वे जैसे निराश होने लगे थे।

"नहीं···" एक साथ कई बच्चे बोल पड़े। सैनिक ने गहरा श्वास लिया। नायक ने रास ढीली की, अश्व की गर्दन पर हौले से थपकी दी। आगे बढ़ा। सैनिक उसके पीछे हो लिये।

बालक ने नायक को पुकारा, "सुनिए।"

वे सब थम गये। उत्सुकता से बच्चों को देखने लगे। बड़े गोप बालक ने आगे बढ़कर पूछा, "क्या बात है नायक जी?···क्या जिस गांव में दस-बारह दिनों के भीतर बालक जन्मा हो, उसे महाराज कंस की ओर से पुरस्कृत किया जायेगा?"

"हां!" नायक ने कुछ घृणामिश्रित स्वर में उत्तर दिया, फिर व्यंग्य किया, "बहुत बड़ा पुरस्कार मिलेगा उस बालक को।"

सभी सैनिक हंसे। गोप बालक ने मुंह बिचकाया, कहा, "तब तो गोकुल वाले रह गये। पता नहीं गोपों को क्या हुआ है? दस-बारह दिन के भीतर किसी बालक को पैदा कर दिया होता तो पूरे जनपद में हमारा ग्राम पिछड़ता तो न!"

"हां-अ्! बड़ी हानि हुई ग्राम की।" एक और बालक ने कहा, फिर वे खेलने लगे। सैनिक आगे बढ़ गये। इस बीच झाड़ियों की ओट लेता एक बालक ग्राम की ओर दौड़ गया था। सैनिकों को भनक भी नहीं लगी।

▭▭

विद्युत्-तरंग की तरह सैनिकों की अगुवाई का समाचार बस्ती में बिखर गया और उसके साथ ही वे सब तुरन्त स्थिति का सामना करने के लिए तत्पर और सहज हो गये। सैनिकों की वह छोटी-सी टुकड़ी

सीधी नन्द गोप के निवास पर ही पहुंची थी। नायक अश्व से उतरा, रोबदार चाल में द्वार के भीतर समा गया। नन्द और यशोदा आंगन में ही बैठे हुए थे। सैनिक को आया देखकर चकित भाव से उसे देखते हुए उठ पड़े। नन्द ने तनिक कठोर स्वर में प्रश्न किया था, "क्या बात है नायक? क्या किसी के गृह में प्रवेश के लिए आज्ञा लेना राज-शिष्टाचार नहीं है?"

सेनानायक जिस दृढ़ता को संजोये आया था, वह कुछ हिल गयी। सकोच के साथ रुककर प्रश्न किया, "क्षमा करें, गोपश्रेष्ठ! भूल हुई मुझसे। कृपया मुझे गृह-प्रवेश की आज्ञा दें।"

"स्वागत है।" नन्द बोले। एक दृष्टि पत्नी पर डाली, फिर कहा, "यशोदा, राजसेना के अधिकारी आये हैं···कुछ दूध आदि···।"

"नहीं-नहीं, नन्द बाबा! हम लोग अभी-अभी बरसाने से आ रहे हैं। वहां वृषभानु के यहां भोजन प्राप्त हुआ। अब इच्छा नहीं है। आप कष्ट न करें।"

"तो कालिन्दी-जल ही लीजिए, नायक!" बड़े संयत स्वर में शिष्टाचार निर्वाह किया नन्द ने। उससे कहीं अधिक लगा कि सहज-स्वाभाविक यशोदा हैं। तुरन्त दृष्टि में स्वागत की मुसकान भरकर भीतर चली गयीं।

नायक की दृष्टि घर में यहां-वहां खोजती हुई-सी घूम रही थी। औपचारिकता के साथ बात तो करता जा रहा था वह, किन्तु प्रतिपल सतर्क और सावधान। नन्द बाबा देखते रहे, फिर प्रश्न किया, "कैसे आना हुआ? मथुरा में सब कुशल तो है? महाराज कंस अच्छी तरह हैं? पिछले दिनों उनके विवाह-समारोह में जाने का अवसर मिला था। बहुत आनन्द हुआ। गौरव भी अनुभव किया मैंने।"

"हां, सभी प्रसन्न थे।" नायक ने जैसे कुछ कहने के लिए कह दिया। दृष्टि उसी खोजी भाव से घूमती हुई।

नन्द ने बात पुनः जोड़ दी, "प्रसन्नता की बात है भाई। मगधपति से सम्बन्ध होना क्या छोटी-मोटी बात है? सम्पूर्ण मथुरा राज्य इससे प्रसन्न हुआ है।"

"हांऽ···।" एक गहरा श्वास लिया नायक ने, जैसे ऊब झेली हो।

यशोदा पात्र में जल ले आयी थी। सेनानायक की ओर बढ़ाते हुए अतिथि-स्वागत मे हौले से मुसकरा भी दी। बहुत सहज, सरल मुसकान थी उनके होंठों पर। नन्द उनकी अभिनय-शक्ति पर चमत्कृत होकर देखते ही रह गये। यशोदा एक ओर घूंघट खींचकर जा खड़ी हुई। सेनानायक ने जल के कुछ घूंट गले उतारे, फिर कुछ संकोच के साथ कहा, "एक राजाज्ञा के निर्वाह हेतु मुझे आना पड़ा है, गोपश्रेष्ठ। मुझे विश्वास है, आप सहायता देंगे।"

"कैसी बात करते हैं नायक ?" आश्चर्य व्यक्त करते हुए नन्द ने उत्तर दिया था, "राजाज्ञा का निर्वाह प्रजाजनों का धर्म होता है। कहें, क्या बात है ?"

"मुझे सूचना मिली है कि पिछले दस-बारह दिनों के भीतर गोकुल के किसी गोप-कुल मे संतानोत्पत्ति हुई है।"

"गोकुल मे ?" चकित हुए नन्द···फिर बड़बड़ाये, "आश्चर्य की बात है। मेरे ग्राम के किसी घर मे ऐसी सुखकारी घटना हो और मुझे सूचना ही न मिले ? न, असंभव है। आपको असत्य सूचना मिली है सेनानायक।"

"किन्तु···।"

नायक कुछ कह सके, इसके पूर्व ही यशोदा इस तरह हंसी, जैसे उपहास कर रही हो, नायक सिटपिटा गया। लज्जा भी हुई उसे। लगा कि मूर्खता की है। कालिन्दी-तट पर बालकों ने जो बतलाया था, उसके बाद यहां तक आकर पूछताछ करना ही व्यर्थ था। नन्द पत्नी की हंसी का पात्र व्यर्थ ही बना। उठ पड़ा, कहा, "क्षमा करें, नन्द बाबा। मुझसे भूल हुई। ऐसी मूर्खतापूर्ण सूचना देने वाले को मैं अवश्य ही दंडित करूंगा।" वह बात समाप्त करते ही द्वार की ओर बढ़ गया। नन्द पीछे हो लिये, बड़बड़ाते हुए।

ऊब और झुंझलाहट से भरा हुआ नायक अपने-आप को अपमानित ही नही, मूर्ख भी अनुभव कर रहा था। एक झटके के साथ सेनानायक अश्वारूढ़ हुआ, फिर सैनिकों से बोला था, "चलो ! गोकुल-यात्रा समाप्त हुई। अब किसी अन्य ग्राम में मूर्ख बनेंगे।"

नन्द और आसपास घिर आये गोप खड़े देखते रह गये थे। सैनिक टुकड़ी वायुगति से ग्राम के बाहर निकल गयी। गहरा श्वास लेकर यशोदा जैसे थकी-सी टिकी रह गयी थी द्वार पर। आंखें मूंदे हुए। ऐसे जैसे बरसों की यातना भोगकर मुक्त हुई हों।

▭▭

बहुत सन्त्रास के दिन थे वे। शक्ति-मद में चूर कंस काल-भय से आक्रान्त होकर हर उस शिशु का शत्रु बन गया था, जिसने देवकी की आठवीं संतान के जन्म समय पर कहीं भी जन्म लिया हो। उग्र केशी का क्रूरतापूर्ण चक्र व्रजभूमि में साक्षात् मृत्यु बनकर बरस पड़ा था। आये दिन जहां-तहां के ग्रामों से समाचार मिलते। सैनिकों ने न जाने कितने दुधमुहे बच्चों को खड्ग से काट डाला था, कितने ही कुलों के दीपक बुझा दिये गये। अनेक माताओं को जीवन-भर के लिए मृत्यु से अधिक पीड़ादायक कष्ट-अग्नि में झोंक दिया गया। एक दुःसह पागलपन ने समूचे शूरसेन जनपद में 'त्राहिमाम्' मचा दिया। बहुत-से लोग इस भय से नगर ग्राम छोड़कर भाग निकले कि कहीं कंस के सैनिकों को उनके यहां संतति जन्म की सूचना न मिल जाये।

सैकड़ों बच्चों को अकालमृत्यु के मुख में धकेलने के बाद भी मृत्यु-भय से भयभीत राजा निश्चिन्त नहीं हो सका था।···आये दिन गणितज्ञों और ज्योतिषियों को बुला भेजता, पूछता, "अब बतलाइए, काल टला या नहीं?"

गणितज्ञ ग्रहों का हिसाब-किताब लगाते, ज्योतिषी पोथे फैलाते··· लम्बे विचार-विमर्श के बाद सूचना देते, "नहीं महाराज! आपका काल नहीं टला है। वह किसी-न-किसी स्थान पर बाल-क्रीड़ाएं कर रहा है।"

"पर कहां?" कंस अधिक बेचैन हो जाते। लगता कि या तो ज्योतिषी और भविष्यवक्ता ही उन्हें ठग रहे हैं, अथवा वह स्वयं किसी अन्धविश्वास में उलझकर मूर्खतापूर्ण क्रिया किये जा रहे हैं।

स्थान कोई न बतला पाता। कंस अपने काल की दिशा अथवा किसी

अन्य संकेत को लेकर ज्ञात करने के लिए कहते। पर ज्योतिषियों का शास्त्र सहम जाया करता।

अब क्या हो? व्यग्र होकर कंस अपने से ही बेकाबू होने लगते। तांत्रिकों का सहारा लिया था उन्होंने। उन्ही से सूचना मिली थी। सूचना भी पूरी नही मात्र संकेत। एक ने कहा था, "राजन्! जिस ग्राम में देवकी के गर्भ से जन्मा बालक पालन-पोषण पा रहा है, उसका प्रारंभ ग शब्द से होता है। व्यवसाय से भी वह बालक किसी ऐसे वंश मे है जिनका व्यवसाय भी ग शब्द से प्रारंभ होता है। आप वही ज्ञात करें।"

"ग शब्द?" कंस अधिक व्यग्र हो उठे थे। ग से प्रारंभ क्या कुछ हो सकता है? केशी और प्रद्युम्न भी विचारने लगे। तांत्रिक का कहना था, इससे अधिक कुछ भी बतला पाना उसके लिए असंभव है।

इस सूत्र पर विचार-विमर्श होने लगा। कल्पना के घोड़े दौड़ाये जाने लगे। अन्त मे निष्कर्ष निकला—गोकुल! और गोकुल से ग्वाल। ज्ञात हुआ। सैनिक हर ग्राम की तरह गोकुल भी गये थे। पर वहां किसी बालक ने उस समय जन्म नही लिया था। सेनानायक ने टुकड़ी सहित ग्राम का दौरा भी किया था। गोप नन्द से भेंट करके भी ज्ञात किया था। सहसा प्रद्युम्न बोल पड़े थे, "तनिक थमिए, सेनापति! मुझे विचार करने दीजिए।"

कंस और केशी, महामंत्री को देखने लगे। थोड़ी देर होंठ भीचे रह-कर प्रद्युम्न ने कहा था, "जहां तक मुझे स्मरण आता है, गोकुल का नंद गोप वसुदेव का बहुत पुराना मित्र है। यही नहीं, वसुदेव का बड़ा पुत्र, जो रोहिणी से जन्मा है, नन्द के यहां ही रहता है। उसका नाम···" उन्होंने माथे पर सलवटें डाली, फिर याद कर लिया, "कर संकर्षण! हां, यही नाम है उसका।"

नन्द गोप को महाराज कंस भी जानते थे। बहुत शांत और विनम्र गोप प्रमुख गोकुल की ओर से प्रतिनिधि के रूप मे वहुत बार, बहुतेक समस्याएं लेकर उनसे भेंट-वार्ताएं भी कर चुके है। किन्तु वह तो बहुत सरल और सहृदय व्यक्ति हैं—वह भला इस षड्यंत्र में भागीदार होने का दुस्साहस करेंगे—विश्वास नही हो रहा था। बोले, "न···न, नन्द

उस तरह के व्यक्ति नहीं हैं। खूब जानता हूं उन्हें।"

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया था, "क्षमा करें राजन्! षड्यंत्र सदा उन्हीं स्थानों पर पलता-पनपता है जो देखने में बहुत सपाट लगते हैं। अन्यथा षड्यंत्र ही कैसा? यदि कांटों की झाड़ी मे ही कांटा दीखा तब कांटा पहचानने मे किसी को क्या समस्या होगी? समस्या तो उस समय होगी, जब झाड़ी न हो और कांटा उपस्थित रहे। निस्सन्देह नन्द जैसे व्यक्ति ही हो सकते हैं जो वसुदेव की सहायता करने में समर्थ हैं।"

"तब नन्द गोप को पकड़ लाया जाये।" कंस ने स्वभावतः सहज भाव से राजाज्ञा दे दी थी।

प्रद्युम्न ने रोका, "नहीं यादवेन्द्र! ऐसा करना भी संभव नहीं है।"

"सो क्यों?"

"नन्द गोप साधारण व्यक्ति नहीं हैं राजन्।" प्रद्युम्न ने शान्त स्वर में, किन्तु बड़ी गंभीरता के साथ कहा था, "वह गोकुल के प्रमुख हैं। गोपों के लिए ईश्वर की तरह पूजित। यों भी ब्रज के अनेक ग्रामों में उनका व्यापक प्रभाव है। सामान्य जन उनके प्रति श्रद्धालु और निष्ठावान् हैं। ऐसे व्यक्ति से सीधे उलझ जाना राजहित में नहीं होगा।"

"तब?"

"तब एक ही मार्ग है महाराज।" प्रद्युम्न ने कहा था, "कूटजाल। इस कूटजाल से ही इस षड्यंत्र का नाश संभव है। यों भी कहा गया है, षड्यंत्र का सामना दुस्साहस और उद्दंडता से नहीं, षड्यंत्र से ही किया जाना नीति है। हमें वही करना होगा।"

"किन्तु किस तरह?" कंस व्यग्र थे।

"उसी को लेकर विचार करना होगा।" प्रद्युम्न ने उत्तर दिया था, "आप निश्चिन्त हों। मैं कोई-न-कोई राह खोज निकालूंगा।"

कंस ने कह दिया था, "ठीक है महामंत्री! आप जो उचित समझें, करें। इस संदर्भ मे राज्यादेश की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। सब कुछ इस तरह हो कि सहज और स्वाभाविक लगे।" आदेश देकर कंस रनिवास की ओर बढ़ गये। रात्रि बहुत हो चुकी थी।

केशी और प्रद्युम्न विचार करने लगे। नन्द को लेकर सूचना जुटाना

आवश्यक होगा। सबसे पहले वही किया था। पता लगाया कि क्या बर संकर्षण के अतिरिक्त भी नन्द गोप की कोई संतान है? और अगले दिन ही समाचार मिल गया था उन्हें। है! एक बालक, अति सुन्दर और कोमल। दोनों ने समझ लिया था—वही है, जिसकी उन्हें तलाश थी। कंस को सूचना पहुंचा दी गयी थी। गोकुल के नन्द ने एक बालक को छिपा रखा है। यही बालक संभवतः देवकीसुत है। और रनिवास से महाराज का आदेश मिल गया था, "उसे किसी भी तरह समाप्त कर दिया जाये।"

▭▭

गोकुल-वासियों ने समझा था—किस्सा समाप्त हुआ। नन्द गोप भी निश्चिन्त हुए थे, यशोदा भी। कंस अपनी क्रूरता का चरम नाट्य रचने के बाद अब कुछ शान्त हो चुका था।

कान्हा की मुसकानों ने वृद्ध दम्पती को सुबह-शाम के भेद से परे एकमात्र रसानन्द से भर रखा था। चंचलतापूर्ण दृष्टि और मोहक मुसकान से युक्त कृष्णदेह बालक जिस क्षण मुसकराता, लगता कि समूचा वातावरण ही हंसने-खिलखिलाने लगा है। घुटनों-घुटनों चलने लगा था वह। कभी तीव्रगति चलते हुए फिसल जाता और रोता। यशोदा तुरंत बांहों में भरकर सीने से लगा लिया करतीं। बदन को जहां-तहां से टटोलतीं, अकुलायी दृष्टि से निहारती—कहीं बालक को चोट तो नहीं लगी। किन्तु माता की गोद में आते ही वह पुनः चंचल होकर पृथ्वी पर उतरने की जिद करने लगता।

पर यशोदा उसे सीने से ही चिपकाये रखना चाहतीं। कितना गुद-गुदा लगता है वह? अनुभव होता है जैसे समग्र को बांहों में भरे होती हैं। उसे छोड़ने का मन नहीं करता, किन्तु वह है कि कभी आकुल पैर गोद के बाहर निकालेगा और किसी क्षण कोमल-कोमल हथेलियों से माता की कमर में गुदगुदी-सी करने लगेगा।

नन्द देखते और कह देते, "उसे छोड़ दो, यशोदा। खेलना चाहता है।"

तुरन्त मन उत्तर खोज लेता, "इसलिए कि यशोदा का अपना जाया है। अपना आत्मांश। यही कारण है कि मोह के अतिरेक में उन्हें यह अन्य बालकों जैसा नहीं लगता।"

पर सन्तुष्ट नहीं होती अपने ही उत्तर से। ना, केवल यह कारण नहीं है। कुछ और है। कुछ और क्या हो सकता है? प्रश्न उठता। यशोदा नहीं जानती, पर इतना जानती हैं कि कुछ अतिरिक्त ही है—जो अजाना है। सृष्टि, ईश्वर और ब्रह्मांड के रहस्यों की तरह अजाना। पर इस अजाने की लीला विचित्र। कभी लगता है कि बहुत जाना-पहचाना है, कभी बिलकुल अजाना। जिस पल उनके हृदय से जुड़कर सहज बालभाव से मन को आह्लादित करता है, लगता है कि यशोदा का बेटा है। पर जिस पल उनसे अलग होकर उन्हें देखने लगता है—नेह के साथ-साथ श्रद्धा भी उपजाता है मन में। ऐसा क्यों?

किन्तु इस क्यों के फेरे में बहुत समय माया नहीं लगा पाती। कान्हा इस विचार की इस भूलभुलैया में भटकने का अवसर ही नहीं देता। हर पल को अपनी नटखटताओं से भरे रहता है। यशोदा कुछ न करते हुए भी व्यस्त रहती हैं। इतनी कि अनेक बार अस्तव्यस्त हो उठती हैं। अनेक बार यशोदा को क्रोध भी आ जाता है उस पर। इतना ऊधम! भला इस आयु में बालक ऐसे क्रोधी और उत्पाती होते हैं? जाने कैसी अदृश्य शक्ति पायी है उसने? वह करेगा, जो उसकी आयु में सम्भव नहीं। कितनी बार बांह पकड़कर थप्पड़ मारने को हाथ उठा लिया है उन्होंने, पर लगता है कि हवा में कोई उनकी हथेली को हौले से थाम लेता है—कौन? यही दुष्ट कान्हा।

यशोदा मुसकराती हैं। कैसे देखने लगता है वह? कैसी निरीह दृष्टि हो जाती है उसकी? तब कैसा भोला लगता है उन्हें? उलटे मारने की चेष्टा में उठाकर सीने से भर लेती हैं। चूम-चूमकर उसके सांवले रंग को भी ललामी से भर डालती हैं। इतना प्यार करती हैं कि स्वयं ही थक जायें।

पर कान्हा?···थकान और उसका तो जैसे सम्बन्ध ही नहीं। गहरा श्वास लेकर एक ओर बैठ जाती हैं। कहती हैं, "ठीक है। कर, जो तेरी

समझ में आये। मैं तो हार गयी तुझसे।"

पर फिर वह कुछ भी नही करता। चुपचाप माता की गोद में सिर डालकर अंगूठा चूसने लगता है। टकटकी बांधे मुसकराती हुई देखती जाती हैं उसे। लगता है कि उसके अतिरिक्त सब अनदेखा है, अनुपस्थित, अनजाना। और जिसे वह मिल जाये उसे और कुछ जानने की आवश्यकता ही क्या है? यही कुछ सोचती हैं यशोदा। तभी एक स्वर धीमे से किसी संगीत धारा की तरह कानों में बरसता है...नेहरस से भरा हुआ चाशनी-सा मीठा। म-ई-या...?

थकी होती हैं, फिर भी उसे बांहों में उठा लेती हैं, "कान्हा? मेरा कन्हैया, मेरा लाल।"

एक बार फिर से चुम्बनों की बौछार शुरू हो जाती है और वह कुनमुनाता हुआ, मीठा विरोध करता हुआ, स्वीकृत अस्वीकार करता-सा।

बहुत बार पति को लेकर दोनों बहिनों में तर्क-वितर्क भी हो जाते थे। लगता था कि दो विपरीत दिशाएं एक-दूसरे से जुड़ना चाहती हैं, किन्तु जुड़ नहीं सकतीं। कैसे जुड़ सकती थीं? प्राप्ति सोचती है—भला कभी दो दिशाएं भी जुड़ी हैं? एक जो सूर्य को जनम देती है, दूसरी जो अंधकार की जन्मदायिनी है। दोनों के स्वभाव, रुचि, व्यवहार, विचार किसी में भी तो समानता नहीं। समानता थी, केवल उनके दिशा होने में। वे दिशाएं थीं—आकाश भी एक था उनका, कंस। धरती भी एक, मथुरा का राजगृह, किन्तु शेष कुछ भी ऐसा नहीं था जो मिले।

प्राप्ति पुनः गत-आगत और विगत के बीच झकझोले खाती हुई वर्तमान से आ जुड़ी है। वर्तमान, जो वैधव्य है। विगत, जो सुख-समृद्धि से पूर्ण राजस से भरा हुआ सौभाग्य था। आगत, जो केवल दया

होगा। पितागृह में दयायाचिका की एक स्थिति।

रथ-गति में हिलते-जुलते हुए धीमे से दृष्टि उठायी थी प्राप्ति ने—देखा, अस्ति नींद के झोंके ने लपेट ली है। आश्चर्य हुआ था उसे। भला इस स्थिति में भी किसी को नींद आ सकती है? क्या अस्ति के भीतर वैसा कुछ नहीं घट रहा जैसा प्राप्ति के भीतर है? मथुरा का विगत और वर्तमान। उनका अपना वर्तमान। और आगत? किसी को लेकर कोई सोच नहीं है उसकी बहिन के मन में?

एक गहरा निःश्वास लेकर सोच छोड़ दिया था प्राप्ति ने। जानती है अस्ति के भीतर वैसा कुछ नहीं होगा। द्वंद्व-मुक्त है वह। एक सीमा तक बौद्धिक क्षमता में भी कम। भावनाहीन जड़ शिला-सी नारी।

नारी? सहसा उसे लगा कि गलत सोच गयी है। भला नारीत्व जैसा कुछ है भी अस्ति में? होता तो क्या देवकी के प्रति उसी तरह दयार्द्र नहीं हुई होती, जिस तरह प्राप्ति हुई थी? चाहती तो पति कंस को दोनों ही मिलकर धीमे-धीमे बहुत कुछ समझा-बुझा सकती थी। रोक न भी पातीं तो उस सीमा तक न जाने देतीं, जिस सीमा तक वह जा चुके थे?

सीमा—जहां छल-प्रपंच और हत्याओं का एक सिलसिला ही लग गया था राजनीति के नाम पर। राजनीति नहीं स्वार्थ। स्वार्थ भी मूर्खतापूर्ण। कालमुक्ति का विक्षिप्त विचार।

पर अस्ति ने उसे कभी सहयोग नहीं दिया। यहां तक कि वह उसी तरह उग्र और दम्भी उस क्षण भी सिद्ध हुई थी, जब राजा उग्रसेन ने अपने पुत्र और अस्ति-प्राप्ति के पति के वधोपरांत राजनिवास में रहने का आग्रह किया था। प्राप्ति संयत रही, किन्तु अस्ति ने जैसे विस्फोटक स्वर में कहा था, "क्षमा करें। जरासन्ध की बेटियों को दया की आवश्यकता कभी नहीं पड़ेगी।"

▭▭

विशेष कक्ष में पहुंचकर अस्ति ने सेविकाओं को आदेश दिये थे। वस्त्रादि रखें। रथ तैयार करवाने के लिए चालकों को सूचना दें। लगता

शरत्

था कि कंस के बाद सहसा ही अस्ति—अस्तित्वहीन हो गयी है। सेविकाएं आदेश निबाह रही थीं। तनिक-सा स्वर होते ही आज्ञा में शीश झुकाये आ खड़ी होतीं, पर फिर अस्ति को अपने अनस्तित्व का अनुभव होने लगता।

ऐसा क्यों होता है ? कारण पर विचार किया था, पर लगा था कि व्यर्थ है। मथुरा में किसी भी अर्थ को पाना अब असम्भव हो चुका है उसके लिए। अब जो भी अर्थ मिलेगा केवल गिरिव्रज में। शक्तिसाधक पिता के गृह पहुंचकर।

प्राप्ति से जितना कुछ कहा था, उसके लिए भी अस्ति को असन्तोष हुआ। उससे कहीं अधिक खेद। किसलिए उतनी बात की ? प्राप्ति सदा ही इस घटित की आशंका व्यक्त करती रही थी। अस्ति जब-जब सुनती उसे अच्छा नहीं लगता था। वह पति को पीड़ित करती महसूस होती। मन अपनी ही बहिन के प्रति घृणामिश्रित खिन्नता से भर उठता। और अब लगता है कि कंस-वध का कारण कृष्ण कम हैं, प्राप्ति के समय-समय पर कंस से कहे गये वे शब्द अधिक हैं, जो चेतावनी के नाम पर केवल अपशकुन-भर रहे। विचारते हुए अस्ति क्रोध से भर उठी…घिनौनी ! पत्नी का धर्म पति का शुभ विचारना होता है, अथवा अशुभ ? किन्तु लगा था कि मन में अस्ति का अपना ही विरोध करती हुई कोई कमजोर सही, पर कोई शक्ति बैठी है। बुदबुदाकर कहती हुई—"व्यर्थ ही मन जलाती हो, महारानी ! सच तो यह है कि पत्नी-धर्म तुमने कभी पूरा नहीं किया। जब-जब कंस ने उन्मत्त भाव से निर्दोष यशोदापुत्र के वध हेतु साधन जुटाये, तब-तब तुमने उसे प्रोत्साहित ही किया। ऐसे, जैसे स्वयं ही इस अशुभ आगत के निमन्त्रण-पत्र पर कंस के अतिरिक्त तुम भी हस्ताक्षर कर रही हो।"

"पर यशोदासुत कृष्ण और बलराम मेरे पति के राज्य में व्यर्थ ही आतंक फैला रहे थे।" अस्ति ने जैसे-तैसे अपने हारते साहस को संजोकर स्वयं को ही उत्तर दिया था, "राजनीति का धर्म था कि ऐसे व्यक्तियों के नाश-हेतु राजा उपाय करे।"

लगा था कि कोई हंस पड़ा है अस्ति के भीतर से, "सच ? क्या

राजनीति का धर्म केवल किसी को हत करना ही होता है ? क्या वह भी राजनीति-धर्म था, जब तुम्हारे पति ने अपने ही वृद्ध, कृशकाय पिता को राजपद से हटाकर बन्दी बनाया ? क्या वह भी राजनीति-धर्म था, जब निर्दोष देवकी और वसुदेव को कारावास में डाला ? नहीं-नहीं, अस्ति ! अब तो न्याय करो। वह सब रीत-बीत चुका है। कम-से-कम अब तो सत्य के प्रति समर्पण कर दो।...प्राप्ति ने ही सच में स्त्री-धर्म पूरा किया पर तुम ? तुम तो मात्र कंस की दुर्नीति बन गयीं।...यही नहीं, उसकी राजलिप्सा और कटुता को बढ़ाने में सहायक भी हुई। प्राप्ति को दोषी ठहराने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।"

अस्ति अपने ही भीतर घुटकर रह गयी थी। इसी तरह घुटे रहना होगा। उत्तर जो नहीं है। या कि उत्तर कभी था ही नहीं ? सम्भवतः यही सत्य है। अस्ति के पास सदा प्रश्न ही रहे। बुद्धिहीनता की एक ऐसी स्थिति, जब मनुष्य केवल प्रश्नों का ठूंठ बन जाता है। उत्तर-विचार से शून्य। और अस्ति वही है। न होती तो उसी क्षण कंस का विरोध न करती, जब कंस ने पूतना को गोकुल भिजवाया था ? अपने विश्वसनीय सामन्त की पत्नी पूतना। छलमयी दुष्टबुद्धि पूतना।

वह सारी योजना अस्ति और प्राप्ति के सामने ही तो बनी थी ? अस्ति निरुत्तर, स्तब्ध, अपने ही घमण्डों से बदहवास-सी बैठी, उस पल को याद करने लगी है—विचित्र है यह आत्म। पल के किसी हजारवें हिस्से में ही मनुष्य को अपने गुण-दोषों का दर्शन याद दिला देता है। हर पल, पल की परतें, परतों पर परतें। वह क्षण स्मृति-सागर से सहसा उछलकर बाहर उभर आया है। पुरातत्त्व की किसी खोज जैसा। मूर्तिमंत।

अस्ति इस स्मृति-सागर के अतल से उठ आए चित्र को सामने पा रही है। इसके साथ ही प्रश्न है, "उत्तर दो अस्ति, क्या उस क्षण भी घुटनों चलते नंदपुत्र ने कुछ अशुभ किया था कंस का ? कोई अपराध ? कोई दोष ?"

▭▭

अस्ति और प्राप्ति—दोनों ही रानियां उस समय कंस के विशेष विचार-कक्ष में थीं। सामने थी वह दुष्टा राक्षसी ! पूतना !

किस सूत्र, किस आधार पर कंस ने उस अबोध बालक में अपना मृत्यु-दर्शन किया था अस्ति को ज्ञात नहीं है। बस, इतना जानती है कि कंस किसी भी तरह छल-बल से नंद गोप और यशोदा के बालक की हत्या करवाना चाहता था। तर्क केवल यह कि वह बालक ही कंस का वध कर डालेगा।

मृत्यु को मिटाकर सदा जीवित रहने की वह इच्छा क्या मूर्खतापूर्ण नहीं थी ? अमरत्व की यह चाहना ही क्या अपने-आप में मृत्यु नहीं थी ? पर तब, न कंस ने यह सोचा था, न बड़ी महारानी अस्ति ने।

पूतना कह रही थी, "आप निश्चिन्त हों, महाप्रभु ! उस बालक का वध इस तरह होगा कि सबके बीच रहकर भी कोई जान न सके कि हत्या किसने की ? मैं समूची योजना बना चुकी हूं। मारक विष से लिपटे हुए स्तन जिस पल बालक के होंठों को छुएंगे उसी क्षण उसकी मृत्यु हो जायेगी।"

कंस के साथ-साथ अस्ति और प्राप्ति—दोनों ने ही सुना, किन्तु मात्र प्राप्ति ही थी जो सहसा बोल पड़ी थी, "मुझे आज्ञा दें, महाराज ! मैं विश्राम करना चाहती हूं।" अस्ति को ही नहीं, कंस को भी लगा था कि प्राप्ति के उस स्वर में इस सबसे असहमति मात्र ही नहीं, इस सबका मौन प्रतिकार भी है, विरोध भी। चेहरा आक्रोश से भरा हुआ था प्राप्ति का, आंखें असमर्थन व्यक्त करती हुई।

प्राप्ति का वह व्यवहार उस समय न तो कंस को अच्छा लगा था, न अस्ति को। प्राप्ति ने मथुराधिपति के उत्तर की प्रतीक्षा भी नहीं की थी। तेजी से बाहर चली गयी। एक क्षण के लिए कंस, सामंत, अस्ति और पूतना सभी सकपकाये-से बैठे रह गये थे, फिर कंस ने आदेश दिया था पूतना को, "हम तुम्हारे ऋणी रहेंगे देवि ! जाओ, इस नीति धर्म को पूरा करो।" और पूतना चली गयी थी।

करो। मथुरा तुम्हारी ही है। उसका सत्ता-सुख, शक्ति, वैभव, सभी कुछ तुम्हारे दास रहेंगे।"

अस्ति ने सुना—उत्तर नहीं दिया। घोर अवहेलना और तिरस्कार की दृष्टि से उन सभी को देखा। लगा था कि पलकों के भीतर से अंगारे उलीच डाले है उन सब पर। एक गहरा श्वास लेकर उद्दंड भाव से रथ में चढ़ गयी थी। पर प्राप्ति? अस्ति को अनुभव हुआ था कि उसने एक बार पुनः पति का वध होते देखा है। छिः, घृणा से मुंह मोड़ लिया था अस्ति ने। प्राप्ति ने कुछ कहा तो नहीं था महाराज उग्रसेन से, बस, झुककर क्रमशः सभी के चरण छू लिये थे। फिर रथ में सवार हो गयी। इसके बाद कोई किसी से कुछ नहीं बोला था। केवल आदेश दिया था अस्ति ने, "चलो सारथी।"

रथ दौड़ पड़ा था। धीमे-धीमे मथुरा ओझल होती गयी थी दृष्टि से। फिर एकदम गुम गया पति की महाशक्ति का आकाश।

▭▭

और अब एक नया आकाश सामने है—मगध के विशाल साम्राज्य का आकाश। जरासन्ध की महाशक्ति का उल्काक्षेत्र। अस्ति और प्राप्ति का पितृगृह। वह धरती जहां उनकी बाल्यावस्था ने किशोर आयु की कुलांचें भरी हैं। वे उद्यान और सरोवर जिनकी महक और बहाव ने किशोरावस्था को यौवन के उद्दाम वेग से भरा है।

सारथी ने मुड़कर कहा था, "देवि, रथ गिरिव्रज क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है।"

दोनों ने सुना। पर बहुत ध्यान नहीं दिया। वे देख रही थीं—दूर, गिरिव्रज के उभरते उन विशाल नगर को, जो मथुरा से कई गुना बड़ा और वैभवपूर्ण था। और फिर रथ ने उस विशाल क्षेत्र में प्रवेश कर लिया था। मथुरा राज्य की पताका ने सभी ओर जैसे एक सकपकाहट बिखरा दी थी। अस्ति और प्राप्ति ने पाया था कि रथ को देखने के लिए असंख्य स्त्री-पुरुष, वृद्ध और बालक मार्गों, छतों और अपने-अपने घरों के झरोखों पर निकल आये हैं।

वे समझ रहे होंगे कि कौन आया है? अस्ति ने सोचा। मगधराज की विधवा बेटियां। सम्राट् जरासन्ध के सीने पर मारे गये वे असंख्य घूंसे जो बेटियों के वैधव्य का बहाना लेकर कृष्ण-बलराम ने जड़े हैं। उन सभी आंखों में विस्मय था। उससे कहीं अधिक चिन्ता और कोनों पर बैठा सहानुभूति और दया का ऐसा भाव जो अनायास ही दोनों को आहत कर गया।

एक कराह अस्ति के भीतर से उठी और मन तक को हिला गयी। इस सहानुभूति और दया के पल भी उनके जीवन में कभी आयेंगे कहां जानती थी? अपने-आप को गहरी ग्लानि और अधिक पीड़ा भोगते अनुभव किया था उसने। अजाने ही अस्ति बोल पड़ी थी सारथी से, "रथ की गति तीव्र करो, सारथी।"

और गति तीव्र हो गयी। गति के साथ ही दृष्टियों की ऐसी दौड़ जो पल-पल रथ से पिछड़ती जा रही थी। अस्ति ने दृष्टि झुका ली थी। गति जानकर सन्तोष अनुभव हुआ था उसे। इस तरह दया और सहानुभूति व्यक्त करती प्रजा की आंखों से बचकर उसने विचित्र-सा सन्तोष अनुभव किया है। कैसा लगता है जब आदमी अपने-आप से ही चोरी कर रहा हो? पर लगा था, व्यर्थ है। इस तरह कब-कब, कहां तक और किस-किस नजर से चोरी की जा सकेगी? संभवत: किसी से भी नहीं। कुल पलों बाद जब वह महाराजाधिराज जरासन्ध के सामने होंगी, तब भी तो ऐसी ही दृष्टियां घेरे होंगीं उन्हें? उनसे किस तरह बचाव हो सकेगा?

हो भी गया तो स्वयं से किस तरह बच सकेंगी अस्ति और प्राप्ति? किस तरह भूल पायेंगी कि दो उद्दंड बालकों के कारण वे विधवा ही नहीं हुईं सम्पूर्ण के सामने—यहां तक कि अपने-आप में भी याचिकाएं बनकर रह गयी हैं। महान् जरासन्ध की बेटियां और शक्तिसम्पन्न मथुरा की महारानियां—याचिकाएं?

छि:। अपने ही भीतर धिक्कार भोगा था अस्ति और प्राप्ति ने। पर बेबस। नियति चक्र के इस जाल के सामने बेबस। असहाय और व्यर्थ।

रथ की गति सहसा कम होने लगी। अस्ति ने जैसे सुधि में आकर देखा—वह राजभवन के मुख्यद्वार तक आ पहुंची है और फिर रथ थम गया था। सारथी सबसे पहले उतरा। सिर झुकाकर एक ओर खड़ा हो गया।

▭▭

दोनों रानियां, शृंगारहीन स्थिति में छलछलाये नेत्रों से मातृगृह की विशाल अट्टालिकाओं को देखती हुई हौले-हौले रथ से बाहर आयी। द्वार पर पिता स्वयं खड़े थे। पीछे अनेक सेवक-सेविकाएं और मगध के सामन्त। उन सभी ने शोकसूचक वस्त्र धारण कर रखे थे। कैसे, किस तरह कदमों को सम्हालते हुए पिता के पास तक बढ़ सकी थी—यह भी ज्ञात नहीं। केवल इतना ज्ञात है कि उनके पास पहुंचते ही चरणस्पर्श के लिए बढ़े बदन में आया झुकाव अनायास ही बेसुधी बन गया था। वे बिलख उठी थी—बिलकुल छोटे बच्चों की तरह उनके करुण क्रन्दन ने कितनी की ही आंखें भर दी थीं। पलकों से वह आये थे आंसू। और पिता की वज्रदेह पर दोनों लतावत् झूलकर रह गयी थी—विशाल भुजाओं ने उन्हें स्नेह से कस लिया था।

न कुछ पिता ने कहा था—न ही पुत्रियां कह सकी। जो कुछ कहा-सुना, वह उन सिसकनों ने जो असंख्य झरनों की तरह अस्ति और प्राप्ति के होंठो से झर उठी थी।

जरासन्ध स्वय ही उन्हें सहारा दिये हुए उनके कक्ष तक पहुंचा गये थे। सहेलियो ने घेर लिया था अस्ति और प्राप्ति को। पर वे पुनः बेसुध-सी हो उठी। निराश्रित भाव की वेदना के बाद सहमा आश्रय की छांह पा जाने पर जो बेसुधी आ जाती है—वही बेसुधी थी यह।

▭▭

कल, कितने समय बाद सुधि आ सकी—अनुमान नहीं। केवल इतना अनुमान कर सकी थी वे कि मगधराज आ रहे हैं—सन्देश मिला था। उस क्षण तक कुछ सहज हो गयी थी दोनो बहनें। भीतर समुद्रवत्

भरे रहे पीड़ा के आंसुओं का एक तट रिता लिया था उन्होंने। इसी खाली धरती की रेत पर संयत हुई लहरों की तरह उत्तर दे सकेंगी।

स्वर्णजटित रत्नाभूषणों से सुसज्जित जरासन्ध आ खड़े हुए थे उनके सामने। लगा था कि पिता वे शब्द खोज रहे हैं, जिनकी बैसाखी लगाकर स्वयं की भावना व्यक्त कर सकेंगे। वे ठिठकी व ठहरी दृष्टियों से उन्हें देख रही थी।

अस्ति और प्राप्ति से भी कुछ कहते नहीं बना। या कहने की आवश्यकता ही क्या थी? अस्ति ने विचार किया था। सम्राट् की तीव्र, दिशाभेदी दृष्टि से उतनी बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल-भरा कांड अनजाना, अनदेखा रहा हो—यह कैसे संभव है? जिस पल बेटियों के चमकते भालों पर वैधव्य का ग्रहण लगा होगा—उसी पल के अगले पलों में मगधराज तक सारी सूचनाएं, सविस्तार पहुंच चुकी होंगी। उन सबको दोहराना व्यर्थ। अब कहना न होगा, केवल सुनेंगी वह।

और जरासन्ध को केवल कहना है। कहना-भर नहीं है—सूचना देनी है कि अपने मित्र, सम्बन्धी और जामाता के वध-दोष पर मथुराधिपति उग्रसेन तथा कृष्ण-बलराम को किस तरह दंडित करेंगे वह! देर बाद बोले थे सम्राट् जरासन्ध, "पुत्रियो, तुम्हारा यह सूना माथा बहुतों के माथों का शून्य बनेगा। मैं तुम्हें आश्वस्त करता हूं कि उन गोप बालकों का वध किये बिना मगध की तप्त धरा शान्त नहीं होगी।"

सहसा चुप हो गये थे वह। ऐसे जैसे किसी शून्य में भटक गये हों। शब्दरिक्त। लौट पड़े।

अस्ति और प्राप्ति उसी तरह शोकाकुल बैठी रह गयी थीं। मगधराज की क्रोधित मुद्रा और पदचापों के वज्रस्वर ने उन्हें सन्तोष दिया था। पर क्या सचमुच इस प्रतिशोध से सुख पा सकेंगी वे? विचार कौंधा, किन्तु लगा व्यर्थ है। इस क्षण यह विचारणीय ही नहीं।

▭▭

मगधराज जरासन्ध ने भी अपनी पदचाप अनुभव की है। उसका अजब-सा भारीपन भी अपने ही भीतर धमक की तरह अनुभव किया है

किन्तु शून्य का भटकाव ज्यों-का-त्यों। विशेष सभा का आयोजन करके उन्होंने तुरन्त ही विज्ञान-कक्ष के विशेषज्ञों को बुला भेजा था। बोले थे, "मैं मथुरा का संहार चाहता हूं। यही मेरा एकमात्र लक्ष्य और अभीष्ट होगा।"

वृद्ध मंत्री सत्यव्रत उठे। चकित होकर देखने लगे थे सभासद्। जरासन्ध की उपस्थिति में सम्मति का दुस्साहस करना ऐसा ही है जैसे पलीते को अग्नि शिखा दिखायी जाये। कई हृदय धड़के, अनेक गलों से थूक गटका गया। सत्यव्रत ने विनीत, किन्तु मृदु शब्दों में कहा था, "मगध-पति की जय हो! धृष्टता न समझें तो मैं एक प्रार्थना करूं।"

जरासन्ध ने केवल उन्हें देखा—कहा कुछ भी नहीं। आंखें अंगारों की तरह धधक रही थीं। इस धधकन ने समूचे सभाजनों को झुलसन का अहसास कराया। पर सत्यव्रत अडिग। श्वेत केशराशि से भरे, तपस्वी जैसे चेहरे पर वही शान्ति बिखरी रही। कहा, "राजन्! दोषी कृष्ण और कर संकर्षण हैं—सम्पूर्ण मथुरा अथवा यादव गणसंघ के निर्दोषों को दंडित करना क्या उचित होगा? महाराज, वे तो आपके स्वर्गीय जामाता की ही प्रजा रहे हैं।"

जरासन्ध ने उपहास की वक्र दृष्टि से वृद्ध मंत्री को देखा, फिर उसी तरह कौंधती बिजली जैसी आवाज में उत्तर दिया था, "श्रेष्ठ सम्मति का हम सदा ही आदर करते आये हैं मंत्रिवर। किन्तु वीर कंस के क्रूरता-पूर्ण वधिकों के अतिरिक्त इस क्षण दोषी समूचा यादव गणसंघ है, जिससे अपरोक्ष समर्थन पाकर ही यह सब हुआ है।"

"किन्तु राजन्! नीति···" वृद्ध ने पुनः कहना चाहा था, पर जरासन्ध ने उन्हें टोक दिया, "आप आसन ग्रहण कीजिए। नीति-अनीति का विचार राजनीति के लिए किया जाता है, वृद्धवर। सम्बन्धियों, मित्रों को लेकर हुए कष्ट के समय नहीं। आपकी सम्मति के लिए आभारी हूं।"

सत्यव्रत बैठ रहे। जरासन्ध ने उनकी ओर से दृष्टि मोड़ दी। एक ओर सेवा भाव में नतमस्तक खड़े विज्ञान-विशेषज्ञों से कहा था, "मथुरा पर गदा-प्रहार होगा! इस तरह कि उन दुष्ट गोप बालकों के साथ-साथ यादव गणसंघ की सम्पूर्ण शक्ति जर्जरित हो जाये।"

"जैसी आपकी इच्छा, देव !" विशेषज्ञों ने शीश झुका लिया था।

जरासन्ध ने जैसे औपचारिकता के लिए सभागृह में उपस्थित सभी सभाजनों को देखा था, फिर झुके सिरों, चुरायी गयी दृष्टियों को अनुमोदन मानकर आज्ञा का अगला चरण प्रसारित किया, "प्रहार की तैयारियां की जायें।"

शब्द गूंजा, फिर गुम्बदों से लौट-लौटकर समूची सभा पर बरसने लगा। सम्राट् जरासन्ध उठे और उसी गति से अपने निवास-कक्ष की ओर बढ़ गये।

वैज्ञानिक-विशेषज्ञ आदेश-पालन में तत्पर हुए। सभा विसर्जित हुई। सब जानते थे—यह गदा-प्रहार मथुरा का ही नहीं उस विशाल गणसंघ का भी नाश कर डालेगा—जहां इस समय नये राजा के राज्यारोहण की तैयारियां चल रही होंगी।

□□

प्राप्ति को भी समाचार मिला था—मगधराज ने क्रोधित होकर मथुरा पर गदा-प्रहार के आदेश दे दिये हैं। मन हुआ था कि इसी क्षण उठें और जाकर महाक्रोधी पिता की सेवा में उपस्थित हों। निवेदन करें—"पितृ, ऐसा अनर्थ न कीजिए। उन असंख्य निर्दोषों का क्या दोष है, जिन्हें आप दोषी मानते हैं ? वे तो कृष्ण-बलराम हैं। उन्हीं को दंडित कीजिए।" किन्तु मन थाम लेना पड़ा। जानती थी—अपमान होगा। क्रोधोन्मत्त जरासन्ध कुछ भी नहीं सुनेंगे।

क्रोधी व्यक्ति नीति-अनीति, पुण्य-पाप, गुण-दोष कुछ भी सोचने में असमर्थ केवल एक जड़ वस्तु बन जाता है। वस्तु जिसका न व्यक्तित्व होता है, न कर्तृत्व। किसी के हाथों से यहां से वहां और वहां से यहां रखा जाने वाला जड़ पदार्थ। प्राप्ति को सहसा पुनः कंस याद हो आये थे—वह भी तो क्रोधोन्मत्त होकर कभी-कभी इस तरह जड़ हो जाया करते थे। जिस दिन पूतना को पठाया और परीक्षार्थ उसे अपने दुष्ट साथियों तक भिजवाया उस दिन तो जड़ ही हो गए थे। वह दिन।

प्रद्युम्न ने टकटकी लगाए हुए उस स्त्री का चेहरा देखा। लगता था कि साक्षात् छल को सचमुच नारीदेह दे दी गई है। नाम बतलाया गया था —'पूतना!' विशेषताएं —अद्भुत शरीर शक्ति, भरी-भरी नारीदेह, सुन्दर-सौष्ठवयुक्त शरीर और उससे कहीं आगे घोर षड्यंत्र बुद्धि! मुसकान किसी को भी मोह सकती थी। दृष्टि विचित्र-सा आकर्षण लिए हुए। ऐसी पूतना के लिए कुछ भी असंभव नहीं!

विशिष्ट प्रकार के घातक-मारक विषयों की जानकार थी पूतना। स्वभाव से बहुत दुष्कर! दीखने में आश्चर्यजनक ढंग से प्रभावित करने वाली सुन्दरी और वस्तुत्व में साक्षात् मृत्युदेवी! ऐसी पूतना को कृष्णवध के लिए चुना गया था। उसने आश्वस्त किया था उन सभी को, 'निश्चिन्त हों! बालक कृष्ण का वध बहुत सहज है। मुझे तो आश्चर्य यह हो रहा है कि आप जैसे लोगों को इस वध के लिए इतना व्यग्र और चिन्तातुर देख रही हूं।"

"किन्तु गुणमयी, तुम किस तरह उस बालक का वध कर पाओगी—यही नहीं समझ पा रहा हूं।" प्रद्युम्न बोले थे, "बालक बहुत छोटा है। ज्ञात है न तुम्हें?"

"हां, मंत्रिवर! जानती हूं।" पूतना ने उत्तर दिया था, "सारी सूचनाएं मुझे मिल चुकी हैं। यह भी ज्ञात हो चुका है कि यशोदासुत गोकुल ग्राम में सभी का प्रिय है। सभी उसके प्रति अतिरिक्त मोह से भरे हुए हैं।"

प्रद्युम्न चुप हो रहे। पूतना कहे गई थी, "मुझे गोकुल ग्राम तक पहुंचाने का प्रबन्ध कर दें। शेष सभी कुछ मुझ पर छोड़ दें! कार्य पूरा करके मैं तुरंत मथुरा लौट आऊंगी।"

"वह सारी व्यवस्था की जा चुकी है, पूतना!" प्रद्युम्न बोले थे, गोकुल तक पहुंचाकर तुम्हें विशेष गुप्तचर यमुना तट पर मछुआरों के वेश में तुम्हारी प्रतीक्षा भी करेंगे। किसी आगत सकट के समय वे तुम्हारी रक्षार्थ तत्पर भी रहेंगे! तुम निश्चिन्त होकर प्रस्थान करो!"

पूतना ने अभिवादन करके विदा ली। महामंत्री ने स्वयं अपनी देख-रेख में विश्वसनीय व्यक्तियों के साथ उसे गोकुल की ओर रवाना कर दिया।

□□

ज्ञात हुआ था—पूतना चली गई है ! उस दिन भी मन हुआ था प्राप्ति का, जाये और महाराज कंस से कहे, "आर्य ! रोकिए उस दुष्टा को ! अबोध शिशु को मातृत्व और स्नेह के छलजाल में हत करनेवाली वह दुष्टा स्त्री नही हो सकती—निश्चय ही राक्षसी है !" उठ भी पड़ी थी प्राप्ति। उठकर तीव्रगति से महाराज कंस तक जा भी पहुची थी, किन्तु सहसा कदम थमे रह गए थे। टकटकी बांधे हुए ओट से पति को देखती रही थी। लगता था कि राक्षसत्व पूतना या उन माध्यमों, साधनों में नही है—राक्षसत्व है उस क्रूर मस्तिष्क में, जिसके संचालन में ऐसे अनेक लोग चल रहे हैं। भले केशी हो या चाणूर, प्रद्युम्न हो या मुष्टिक, वत्सासुर हो या कोई अन्य।

व्यर्थ होगा ! प्राप्ति पूतना को रोकने की अपेक्षा उससे कर रही है जो पूतना के पोषक हैं ! भला बांबी से कहा जाता है कि वह नाग को स्थान न दे ? लौट आई थी प्राप्ति ! समझ लिया था कि पाप हर दिन के हर पल में बढ़ता जा रहा है। एक दिन गले तक पहुंच जायेगा। पहुंच भी गया ! पर उससे पहले क्या कुछ नही हुआ था ? पूतना काड ही क्या कम भयावह और रोमांचक था ! कितना अच्छा होता कंस उसी से समझ सके होते ? वह अद्भुत बालक !

□□

ज्ञात हुआ था कि गोकुल में गोप नंद के गृह पर कोई उत्सव हो रहा है। आसपास के अनेक ग्रामों से आमंत्रित स्त्री-पुरुष उसमें भाग ले रहे हैं। इससे अधिक उपयुक्त अवसर पूतना के लिए कोई नही हो सकता था। पूतना प्रसन्नतापूर्वक गोकुल रवाना हुई। उसने बालक कृष्ण का वध करने के लिए स्वयं ही योजना बनाई थी। योजना को लेकर किसी से कुछ नही कहा था। यहां तक कि प्रद्युम्न के यह पूछने पर कि कैसे क्या होगा ? बोली थी, "आपको अपने कार्य से सम्बन्ध रखना चाहिए, उसकी क्रिया से नही ! वह निश्चित करने का अधिकार मुझ पर ही छोड़ दीजिए !"

प्रद्युम्न ने तर्क नही किया था। पूतना को लेकर जो कुछ सुन-जान

रखा था, उसके बाद तर्क करने की आवश्यकता नहीं थी। केवल इतना जानते थे कि वह जो भी कार्य करेगी, बड़ी सहजता और स्वाभाविकता के साथ पूरा करके मथुरा लौट आएगी ! उसे लेकर यही कुछ बतलाया गया था उन्हें ! अतः निश्चिन्त हुए ! जानने के लिए केवल इतना जान लिया था उन्होंने, "देवि, तुम यशोदासुत को पहचानोगी कैसे ?"

हंसी थी पूतना। इस तरह जैसे महामंत्री की बुद्धि पर तरस खा रही हो।

□□

जिस समय बालक को देखा—पहचानने में बहुत कठिनाई नहीं हुई। स्त्रियों के समूह के बीच वह अन्य बालकों के साथ खेल रहा था। सभी ओर आनद और उल्लास का वातावरण, सभी ओर व्यस्तता !

उत्सव नद गोप ने ही आयोजित किया था। आसपास बहुतेक ग्रामों की स्त्रिया आई थी। एकजुट होकर आनदोत्सव में भाग ले रही थीं। नृत्य, गान और हास-परिहास का अद्भुत वातावरण था !

पूतना[1] भी अन्य स्त्रियो की तरह समूह के बीच जा बैठी ! दृष्टि बालक कृष्ण पर टिकी हुई है ! ऐसे जैसे आमंत्रण दे रही हो उसे ! रह-रहकर बालक की चपल दौड़ को यशोदा थामने का भी प्रयत्न करती। उसे गोद में समेटे रहना चाहती, किन्तु वह था कि बार-बार किसी-न-किसी स्त्री की गोद मे जा बैठता ! पूतना टकटकी बांधे उसकी ओर देखे जा रही थी। सहसा बालक उसकी ओर बढ़ा। एक दृष्टि उसे देखा। पूतना मुसकराई। और बालक अजब-से आकर्षण मे बधा हुआ कई महिलाओ के बीच से घुटनो-घुटनो गुजरता हुआ पूतना तक जा पहुंचा।

---

१. पूतना : महाभारत मे इसे बालघातिनी राक्षसी कहा गया है। श्रीमद्भागवत के १० वें स्कंध में पूतना को बकासुर और अघासुर की बहिन बतलाया गया है। संभवतः मथुरा मे असुर (असीरियन)—विदेशी—काफी संख्या मे बसे थे।

अगले ही क्षण वह पूतना की बांहों मे था। खिलखिलाता हुआ! फिर गोद में।

यशोदा ने उठकर कहा भी था, "लाओ बहन, कान्हा को मुझे दे दो! बहुत चचल है।"

"नही बहिना! यही रहने दो!" स्नेहमिश्रित स्वर में पूतना ने उत्तर दिया था, "बडा सुखकारी बालक है!"

यशोदा आनंद और गौरव से भरी-भरी अपने स्थान पर जा बैठीं। कान्हा पूतना की गोद में बहुत प्रसन्नता अनुभव कर रहा था।

कुछ समय बीता। पूतना उसे दुलराती रही, फिर दृष्टि चुराकर हौले से आचल के भीतर समेटने लगी। बालक भी सहज भाव से आचल में समा गया। अगले ही क्षण पूतना ने स्तन बालक के मुख में दे दिया! बस, कुछ क्षण और फिर स्तनो पर लिपटा तीव्र मारक विष बालक के हलक से नीचे जा पहुंचेगा!

बालक ने भी स्तन होंठो में समो लिया! हौले-हौले उसे चूसने लगा, पूतना ने अदृश्य आनद और राजकार्य में उपलब्धि का सुख अनुभव किया। सहसा बालक ने स्तन को जोरों से दबाया! इस जोर से कि पूतना के होठों से एक तीव्र कराह निकली!

सबने चौंककर उसकी ओर देखा! समारोह में विघ्न पड गया! यह क्या? पूतना बालक को अपनी गोद से दूर धकेलने की चेष्टा कर रही थी और बालक था कि जैसे उसकी गोद में चिपककर ही रह गया था! पूतना जोरों से चीख रही थी। और बालक पूर्ववत् स्तन से होंठ चिपकाये हुए! वह तड़पती हुई-सी उठ पडी। बालक चिपका ही रहा!

हे ईश्वर! अनेक स्त्री-पुरुषों ने घबराकर वह दृश्य देखा। यशोदा हक्की-बक्की-सी कुछ पल देखती रहीं, फिर उस ओर लपकीं; किन्तु इस बीच दृश्य इतनी विचित्रता ले चुका था कि पूतना पागलों की तरह चीखती, कराहती उसे अपने-आप से खींचकर परे कर देने की कोशिश करती उछलने-कूदने लगी थी! पर बालक पूर्ववत्!

"कान्हा!" यशोदा चिल्लाईं, पर कान्हा पूतना के स्तन से लगभग झूला हुआ। ऐसे जैसे पूतना के ही शरीर का अविभाजित अंग हो! यह

कैसा चमत्कार ! एक स्त्री अपने स्तन से बालक को हटा नहीं पा रही है ! आश्चर्य ! अविश्वसनीय !

स्तब्ध नर-नारी देखते रह गए ! पूतना भागने लगी, लड़खड़ाती और गिरती-पड़ती किन्तु बालक लटका हुआ। पूतना के केश खुल गए, आंखें उबलने को हो आईं, यहां तक कि अब उसकी चीखें भी सिसकियां बनने लगी, और कान्हा पहले की ही तरह ! जोंक-सा चिपका हुआ ! कुछ लोग दौड़ पड़े थे कान्हा को अलग करने की चेष्टा में; किन्तु उस बीच भागती हुई पूतना समारोह स्थल से काफी आगे यमुना तट तक जा पहुंची थी ! उसकी रक्षार्थ आए गुप्तचर भी यह अद्भुत दृश्य देखकर हक्के-बक्के रह गए थे। केवल किसी चमत्कार के दर्शक की तरह !

सहसा वह गिर पड़ी। यहां-वहां करवटें ली। मर्मान्तक वेदना से कराही, कलपी और तड़पती रही। फिर उसकी आंखें बाहर को उबलने लगी ! भयावह, वीभत्स दृश्य था वह ! विभिन्न स्वर्णाभूषणों और सुन्दर वस्त्रों मे सजी नारी सहसा राक्षसी की तरह कुरूप होने लगी थी। प्राणहीन !

कान्हा पूर्ववत् उसके स्तन से चिपका हुआ था। लहू की एक बड़ी धार पूतना के स्तन और कान्हा के होंठ के पास से होती हुई पूतना के समूचे बदन पर वह आई थी। कई लोग मिलकर उसे खींचने, अलग करने का प्रयत्न करने लगे थे ! फिर खींच भी लिया था उन्होंने—आश्चर्य ! कान्हा के होंठों पर लहू नहीं था, किन्तु पूतना का स्तन फटा हुआ ! उस समय तक प्राणहीन हो चुकी थी वह !

एक खलबली मच गई थी। तरह-तरह की बातें, तरह-तरह की टिप्पणियां। मथुरा से पूतना के साथ आए गुप्तचर तीव्रगति से मथुरा की ओर भाग खड़े हुए ! रोमांचित, कम्पित !

कभी ऐसा भी हो सकता है ? एक छोटा-सा बालक स्त्री के स्तन से चिपके और फिर उस समय तक न हटाया जा सके, जब तक कि स्त्री प्राणहीन न हो जाए ! सम्पूर्ण जीवनशक्ति खींच ली थी यशोदासुत ने !

थूक निगलते, कांपते-थर्राते हुए काफी राह पार की थी उन्होंने। अपने ही भीतर हुचमचाए सवालों से भरे हुए। वे एक-दूसरे को देख भी

रहे थे, किन्तु लगता था कि उनके पास बोलने की शक्ति नहीं रही है ! वह रोमांचक दृश्य देखने के बाद भला कौन बोल सकता है ?

किन्तु वह सब विश्वसनीय तो नहीं था ? देर बाद उनमें से एक सहज हुआ। गोकुल से मथुरा तक की बहुत राह पार कर आये थे दोनों। कहा था, "तूने देखा था दुरुधर ? वह बालक पूतना से किस तरह चिपक गया ? ऐसा कि प्राणहीन हो गई ? नहीं-नहीं, कोई अन्य कारण रहा होगा !"

बौखला पड़ा था दूसरा, "अन्य कारण क्या हो सकता है ?" स्पष्ट तो है कि उसने पूतना के प्राण केवल स्तन से खींच लिये ! राह में बतला भी तो रही थी वह कि उसने स्तन में विष लगा रखा है। बालक को स्तन-पान कराएगी और बस ! यही किया होगा उसने, पर नंद के बेटे में अद्भुत शक्ति है। उसने इस तरह स्तन को होंठो से थामा कि बस ! कथा समाप्त हो गई !"

"ऊं हूं ! मैं नहीं मानता।" पहला बोला, "यह असंभव है !"

किन्तु यह सब हुआ है ! अगले शब्द उसके अपने मन ने नहीं बोलने दिए थे। लगा था कि भीतर से ही आवाज आने लगी है—"देखकर भी अनदेखा कैसे कर सकते हो तुम ?"

□□

सच ही तो ! देखकर अनदेखा कौन कर सकता था ! यशोदा सीने से लगाए खड़ी थी कान्हा को ! वह पूर्ववत् मुसकराता हुआ, उतना ही सहज और उतना ही स्वाभाविक। सरल भी। पर न वे सहज रहे थे, न स्थिति स्वाभाविक थी। घटना भी सरल नहीं।

पूतना बीभत्स और डरावनी दीख रही थी। कुछ समय पूर्व जिस चेहरे पर सौन्दर्य की आभा बिखरी हुई थी, जिन पुतलियों में जीवन हरियाली की तरह लहलहा रहा था—अब वे ही मरुस्थल के सीमाहीन सन्नाटे की तरह सामने बिखरी थीं !

कई ने थूक के घूंट निगले। अनेक ने भयभीत होकर दृष्टि घुमा ली। स्त्रियां घबराईं, सहमी दूर जा खड़ी हुईं। यशोदा पल-पल बालक को

देखती हुई। कहीं उसे तो कुछ नहीं हुआ ? पर कान्हा प्रभावहीन था। वैसा ही सलोना, सुकुमार और सुन्दर ! पर इस सलोनी, सुकुमार देह ने एक शक्तिशाली, सुगठित देहवाली नारी की समूची प्राणशक्ति हर ली ?

कोई बोला था, "विश्वास नहीं होता ! इसके मृत होने का कोई और कारण है।"

"और क्या कारण है ?" किसी गोप ने तर्क किया।

"कोई नहीं है ! केवल कान्हा है ! उसी ने इसका वध किया !"

तीसरी आवाज समाप्त हो, इसके पूर्व ही एक प्रश्न उठा दिया था किसी ने, "पर यह स्त्री है कौन ? कहां से आई ? कोई परिचित है इसने ?"

महत्त्वपूर्ण बात थी। सभी ने मुड़कर एक-दूसरे की ओर प्रश्नातुर देखा। स्त्रियों ने भी आकर पूतना का चेहरा देखा। अनजान, अपरिचित चेहरा ! एक रहस्य बिखर गया सब ओर। संशय भी। सवाल उठा कि यदि इस स्त्री को कोई नहीं जानता तो यह आई कहां से ? क्यों आई ? कान्हा को गोद में बिठाकर इसने स्तनपान क्यों कराया ? कौन है वह ? क्यों है ? आई किसलिए ? कोई पहचानता है उसे ? कभी, कहीं देखा है ? अनेक प्रश्न थे, अनेक जिज्ञासाएं, किन्तु उत्तर में सब ओर एक सपाट खालीपन बिखरा हुआ। हर चेहरा उत्तरहीनता के कारण निराश, हर आ ख केवल संशयों के छोटे-छोटे सागर अपने भीतर समोए हुए !

□□

रहस्य का कोहरा और सघन हो गया था ! उससे कहीं अधिक सघन हो गई थी कान्हा को लेकर चिन्ता ! स्पष्ट था—षड्यंत्र है ! कुल मिलाकर गोकुलवासी ही नहीं, आसपास के अनेक ग्रामीण महिलाएं और पुरुष उस घटना के कारण हतप्रभ हो गए थे। समारोह समय-पूर्व समाप्त हो गया। देर रात्रि गए तक अनेक लोग चर्चाएं करते रहे। शंका-कुशंका से पूर्ण बातें ! नंद गोप और यशोदा घर में समा गए थे।

यशोदा की रुलायी नहीं थम रही थी ! हे ईश्वर ! कान्हा को कुछ

हो जाता तो ? चूम-चूमकर उसके गाल सुर्ख कर दिए थे माता ने। बालक कुनमुनाकर अब माता के नेह का निषेध करने लगा था ! यशोदा मुख उसकी ओर बढ़ाती तो घबराकर चेहरा मोड़ लेता। कभी इस ओर, कभी उस ओर !

टकटकी बांधे देख रहे थे नंद गोप। सहसा झुंझला उठे थे, "अब बस भी करो। देखती नहीं। बालक थक गया है ! उसके शरीर में जलन होने लगी होगी !"

यशोदा थम गई थी, कुछ पलों के लिए फिर भूल गई। दोबारा चूमा। किन्तु इस बार नन्द बाबा का उस ओर ध्यान नहीं था, वह विचारों में भटक गए थे—दूर, बहुत दूर तक !

इसका अर्थ था कि वसुदेव-देवकी के पुत्र का वध करने के षड्यंत्र होने लगे हैं ! और कान्हा उनकी दृष्टि में आ चुका है ! जब जितना चिन्तातुर हुआ, उससे कहीं अधिक व्यग्र हो उठा। जानते थे कि षड्यंत्र कहीं समाप्त नहीं हो जाएंगे, किन्तु यशोदा भोली। वह मृत्यु पूतना की अब भी मात्र संयोग समझे हुए थी। सहसा नन्द उठ खड़े हुए। द्वार की ओर बढ़े। यशोदा ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया था। वह कान्हा को सीने से लगाए हुए जैसे उसी के अन्तस् में समा गई थी ! या उसे अन्तस् में समो लिया था ! नन्द बाबा मुख्यद्वार के बाहर आ गए।

□□

उसी का निराकरण करेंगे नंद ! यंत्रवत् चलते हुए गाव की सन्नाटे भरी राह पार करते गए थे। अगले ही क्षण वह एक घर के सामने खड़े थे। हौले से द्वार खटखटाया, भीतर से प्रश्न कौंधा, "कौन है ?"

"मैं—नंद गोप ! द्वार खोलेंगे वैद्यवर !" वृद्ध बोले।

अगले ही क्षण द्वार खुल गया। श्वेत दाढ़ी से भरा एक कृशकाय शरीर सामने था। चकित भाव से नंद को देखता हुआ, "इस समय ? कुशल तो है ? देवी यशोदा और कान्हा ?"

नंद गोप ने बात काट दी, कहा, "वे सब ठीक हैं वैद्यराज ! मैं एक अन्य कार्य से आपको कष्ट देने आया हूं।"

"कहो ?"

नंद गोप ने मन का संशय बतला दिया, फिर बोले, "मेरी इच्छा है कि उस अपरिचित महिला की शव परीक्षा कर लें आप ! उसने स्तनपान कराया तो क्यों ? यही रहस्य नहीं समझ पा रहा हूं।"

वृद्ध वैद्य को भी लगा कि नंद का संशय उचित है। सहमत हुए। बोले, "तुम तनिक देर यहीं रुको ! मैं अ भी आया।" बात समाप्त करके वह भीतर चले गए। लौटे तो उनके हाथों में कुछ ओषधियां थीं। बोले, "आओ, मेरे साथ !"

आसपास के घरों में भी जाग हो गई थी। यों भी कान्हा के साथ घटी घटना ने सभी को चर्चाओं से भर रखा था। वे भी साथ हो लिए। सात-आठ ग्रामीणों से घिरे गोप-प्रमुख वैद्य को साथ लिए पुनः यमुना तट की ओर बढ़ चले !

शव उसी तरह पड़ा हुआ था। अच्छा ही हुआ कि ग्रामीणों ने उसे उसी समय उसे यमुना में विसर्जित नहीं कर दिया। यह संशय सदा के लिए रहस्य बना रह जाता ! पर अब ? अब कुछ नहीं छिप सकेगा।

जिस क्षण वैद्यराज ने पूतना के शरीर की परीक्षा प्रारम्भ की, विभिन्न ओषधियां स्तनों और होंठों पर लगाईं— दर्शक गोपों के मन में एक रहस्यपूर्ण सनसनी बिखरी हुई थी। क्या कहेंगे वह ?

लगभग दस-पन्द्रह पलों तक वैद्य परीक्षा करते रहे। स्तनों के गिर्द की चमड़ी देखी। लहू पर ओषधि की कुछ बूंदें डालकर परीक्षण किया !

उनका चेहरा तनाव से भरता जा रहा था। उससे कहीं अधिक वह व्याकुल दीखने लगे थे ! थोड़ी देर थमे हुए उस परीक्षा के बाद शव को देखते रहे। सहसा पुनः वही परीक्षण प्रक्रिया दोहराने लगे !

उनके चेहरे की चिंता, तनाव और बेचैनी ने दर्शक गोप समुदाय और नंद को भी बेचैन कर दिया था। क्या समझे वह और कहां तक परिणाम निकला है ? जानने की तीव्र उत्कंठा होने लगी। सहसा वैद्य उठ खड़े हुए थे। स्वर रहस्यमय था उनका, "शीघ्रता से अपने गृह चलो, नंद ! कान्हा की भी परीक्षा करनी होगी।"

"किन्तु वैद्यवर !" नंद ने जानना चाहा था, "बात क्या है ? तनिक सुनूं तो ?"

"बाद में सुनाऊंगा !" वैद्य ने कहा था। स्वर में चिन्ता घुली हुई थी। उससे कहीं अधिक उतावली। बोले थे, "अभी समय नहीं है। घर चलो !" इसके पूर्व कोई कुछ जानना चाहे या पूछे—वृद्ध वैद्य पुनः बस्ती की ओर चल पड़े। इस बार चलने में दौड़ने-सा भाव था ! वे सब भी अकुलाए हुए पीछे।

□□

थोड़ी देर बाद वे सब नंद के घर थे। अनेक लोगों की आवा-जाही और शोर का परिणाम यह हुआ कि कुछ और लोग भी घरों से बाहर निकल आए। अब वे सब नंद गोप के आगन में खड़े हुए थे। वृद्ध वैद्य, नंद और गोकुल के एक-दो अन्य व्यक्ति शयन-कक्ष में।

यशोदा उन सभी को देखकर चौंक गई थी। भयभीत होकर उस छोटे-से समूह को देखने लगी। उन सभी ने एक-दूसरे को देखा, फिर नंद बोले थे, "देवि ! वैद्यराज कान्हा को देखना चाहते हैं।"

"क्यों ?"

इस क्यों का क्या उत्तर दें नंद ? निरुत्तर होकर वैद्य को देखा। वृद्ध वैद्य बोलने लगे थे, "देवी ! *कान्हा को उस दुष्टा ने स्तनपान कराया था*, परखना चाहता हूं कि उसके दुग्ध में कोई दोष तो नहीं था, जिसका बालक पर कुप्रभाव हुआ हो ?"

यशोदा पुनः डर गईं। सहमती हुई-सी एक ओर हुईं। वैद्य बालक पर झुक गए। कान्हा जाग रहा था। वैद्य की ओर इस तरह मुसकराया जैसे उन्हीं का उपहास कर रहा है। वैद्य ने जीभ देखी, आंखें परखीं। फिर हाथ-पैरों की परीक्षा के लिए मोड़ना-जोड़ना चाहा, कान्हा ने जोरों से हाथ-पैर मारने प्रारम्भ कर दिए। गति इतनी तीव्र थी कि वैद्य को अवसर ही नहीं मिला—हाथ या पैर छू सकें! एक गहरा श्वास लेकर मुसकराते हुए वैद्य खड़े हो गए थे, "आश्चर्य!" उनके होंठों से बोल फूटे।

कैसा आश्चर्य? सभी ने चौंककर उन्हें देखा। आश्चर्य क्यों है? रहस्य खोल दिया था वैद्य ने। कहा था, "अपने सम्पूर्ण जीवन में मैंने ऐसा चमत्कार नहीं देखा! निश्चय ही यह बालक अलौकिक है!"

"पर ऐसा हुआ क्या है वैद्यराज?" अकुलाए स्वर में यशोदा ने प्रश्न किया।

"यों कहो देवि, कि सब कुछ अलौकिक ही हुआ है!" वैद्य ने उत्तर दिया था, "मनुष्य के लिए यह असंभव था! किन्तु यदि मनुष्य से यह संभव हुआ है तो निस्संदेह ईश्वरीय है! केवल चमत्कार!"

यशोदा की समझ में कुछ नहीं आया। वैद्य मुड़े और बाहर चल पड़े। पीछे-पीछे सभी। अब तक सब कुछ रहस्यमय था।

जाते-जाते यशोदा से कह गए थे वृद्ध वैद्यराज, "अब निश्चित होकर बालक के साथ रहो देवि! कान्हा निश्चय ही अद्भुत है!"

यशोदा सम्पकायी-सी खड़ी रह गईं।

□□

वैद्यराज बाहर आए। नंद और अन्य गोपों ने घेर लिया था उन्हें। वृद्ध वैद्य बड़बड़ाए जा रहे थे, "जो हुआ, असंभव था! मनुष्य के लिए नितान्त असंभव!"

"किन्तु क्या महानुभाव?" अकुलाकर एक गोप ने पूछ ही लिया था।

खीझ आने लगी थी बूढ़े पर। बोल ही नहीं रहा है। केवल पहेलियां बुझाए जा रहा है।

वैद्य ने इर्द-गिर्द देखा। आश्वस्त हो लिया कि कोई महिला नहीं है,

फिर कहा, "उस राक्षसी के स्तनों पर मारक विष लगा हुआ था ! इतना संहारक कि स्पर्श मात्र से किसी भी जीव के प्राण जा सकते थे, किन्तु कान्हा ने न केवल उस मारक विष का होठों से स्पर्श किया है, अपितु उस विषधारिणी के प्राण भी वही से हर लिए हैं ! नितान्त आश्चर्य !"

"किन्तु कान्हा…" अब नंद की आवाज रुआंसी हो उठी थी।

वैद्य ने सहसा कंधे पर हाथ रखकर उन्हें सांत्वना दी थी, "घबराओ मत गोप ! तुम्हारा बालक स्वस्थ ही नहीं, अति स्वस्थ है ! उसपर उस विष का तनिक भी प्रभाव नहीं हुआ है ! इसीलिए तो कहता हूं कि वह अलौकिक है ! मनुष्य नहीं…"

वे सब हक्के-बक्के खड़े रह गए ! कुछ स्वर भी बहे थे, "परमात्मन् ! कैसी विचित्र लीला है तुम्हारी ! बालक को यह शक्ति दी ?"

"निश्चय ही शक्ति मिली है उसे ! कोई चमत्कारिक, अलौकिक शक्ति !" वृद्ध बोले थे, "उसकी पूजा करो ! वह पूजनीय ही है ! मैं तो नतमस्तक हुआ। जीवन का सम्पूर्ण वैद्यक ज्ञान जिसने झुठला दिया हो, उसे अलौकिक न कहूं तो क्या कहूं ?"

वे सब सुनते रहे—कान्हा मन में इस तरह उभरने लगा था, जैसे रात्रि के अंधकार को चीरते हुए घुटनों-घुटनों हंसता हुआ उन्हीं की ओर बढ़ा आ रहा हो ! मन आनंद और उत्साह की अजब उमगों में भरा हुआ ! अलौकिक ! अनजाना ! शक्तिस्वरूप ! यशोदासुत ! रात्रि का अन्धकार भी जैसे प्रकाशित लगने लगा था…

□□

किन्तु केशी को लगा था कि अंधकार हो गया है ! राजभवन में असंख्य दीप जल रहे हैं। रंगीन रोशनियां जहां-तहां फौवारों की तरह छूट रही हैं, किन्तु जो देख-सुन रहा है, वह घोर अंधकार की तरह प्रभावी है ! रौशन पुतलियों को बेरौशन कर देने वाला !

वे हांफते हुए सामने खड़े हैं—दोनों सैनिक ! पूतना के साथ भेजा गया था उन्हें। कुछ ऐसा-वैसा हुआ तो पूतना की सहायता कर सकेंगे, किन्तु उसकी सहायता करना दरकिनार, वे स्वयं सहायता-सहारे के

९४ : कालिंदी के किनारे

आश्रित !

हांफ रहे थे वे ! जब आए तब सहसा शब्द ही नहीं फूटे थे उनके। शरीर गीले कपड़े की तरह जहां-तहां से लटकता हुआ-सा लग रहा था। घबराहट में न दृष्टि सहज रह गई थी, न स्वर। केशी और प्रद्युम्न भौचक्के होकर उन्हें देखने लगे थे। द्वारपालों ने दोनों को सामने ला पहुंचाया था।

वे धरती पर बिछ गए थे। सेनापति और महामंत्री चकित होकर उन्हें देखते हुए। अर्धरात्रि की नींद से जगाया गया था उन्हें। सूचना दी गई थी कि गोकुल से भागे आए मथुरा के विशेष सैनिक भेंट करना चाहते हैं दोनों से ! दोनों एक ही सभागार में पहुंचे !

"कुछ बोलो तो !" चीख पड़े थे केशी ! पर वे रुआंसे। एक की पलकों से आंसू ढलक आए थे, दूसरे की पलकें खाली —मरुथल-सी सपाट !

झल्ला उठे थे प्रद्युम्न। चीखकर प्रश्न किया, "कुछ बोलोगे भी तुम लोग ?"

जैसे-तैसे उनमें से एक बोल सका था, "चमत्कार हुआ महाराज ? वह बलिष्ठ स्त्री उस घुटनों चलते बालक द्वारा हत हुई !"

"क्या ऽ ? —" केशी का मुंह खुला रह गया ! लगा कि गलत सुना है उन्होंने। भला यह कैसे हो सकता है कि उस दुधमुंहे बालक ने पूतना को मार डाला हो ? लगा कि सैनिक पागल हो गए हैं। बौखलाकर बोले, "तुम लोगों का मस्तिष्क तो ठीक है ना ? ऐसा भी हो सकता है भला ?"

"प्पर—पर हुआ यही है सेनापति !" एक सैनिक ने कहा। फिर धरती पर बिछने लगा— ऐसे जैसे चक्कर आ रहे हों !

सेनापति और महामंत्री ने परस्पर एक-दूसरे को देखकर निश्चय किया था कि किसी घटना के कारण सैनिक भयाक्रांत हो उठे हैं। मन-मस्तिष्क विचलित हो गया है उनका। निश्चय किया था—कुछ विश्राम मिलने के बाद सहज हो सकेंगे। सेनापति ने आदेश दे दिया, "तुम लोग इस समय विश्राम करो ! जब सहज हो लो, तब प्रातः राजसभा में उपस्थित होना !"

"किन्तु देव—" सैनिक ने कहना चाहा कि सहज हैं वे किन्तु सेनापति और प्रद्युम्न ने अवसर ही नही दिया। उठे और अपने-अपने निवास की ओर चले गए।

सैनिको को अन्य सैनिको की देख-रेख मे एक तरह से बंदी ही बना लिया गया था। सोने के लिए कहा गया, किन्तु न जाने कितनी रात्रि तक जागते रहे थे वे। भोर हुए पुन महामंत्री तक संदेश भिजवाया था – भेंट का निवेदन !

आदेश मिला कि विशेष भेंटकक्ष मे महाराज कंस के सामने उपस्थित हों। निश्चित समय पर दोनो सैनिक कक्ष मे जा पहुचे। सहज उस समय भी नही हो सके थे। अन्तर केवल यह हुआ था कि स्वर, शरीर और शब्द एक सीमा तक संयत हो गए थे, हालाकि चेहरो पर अब भी हवाइयां उड़ रही थी। आंखो मे उस समय भी तनाव था।

□□

लगता है कि वह क्षण स्मरण-सदर्भ के सिलसिले मे दृष्टि के सामने चित्रवत् उभर आया है। सभा मे जाने के पूर्व ही विशेष दूत ने समाचार दिया महाराज को, "राजन् ! महामंत्री प्रद्युम्न और सेनापति केशी किसी विशेष राजचर्चा के लिए आपसे भेंट करना चाहते है !"

प्राप्ति ने भी सुना था—अस्ति ने भी। दोनों पास-पास खड़ी थी। जब कंस सभा की ओर प्रस्थान करते थे, दोनो महारानिया उन्हें मुसकराते हुए विदा करने आती थी। उस दिन भी पहुची थी।

कंस सुनकर चकित हुए थे "सभा समय के पूर्व भेंट करना चाहते है ? आश्चर्य ! ऐसी क्या विशेष बात हुई ?" वह बुदबुदाए, फिर दूत को जाने का संकेत कर दिया था। प्राप्ति और अस्ति भी चकित भाव से देखती-सुनती रही थी बात, फिर राजा विशेष कक्ष की ओर चले। पीछे-पीछे महारानियां !

वे सहमे हुए-से खड़े थे। महाराज कंस को कक्ष में प्रवेश करते देखकर ही प्रणाम मे झुक गए, फिर प्रद्युम्न ने पहल की थी, "क्षमा करें राजन्, पर कार्य ही ऐसा था, कि हम लोगो को सभा पूर्व आपसे निर्देश लेने आना

पड़ा।"

प्राप्ति और अस्ति महामंत्री के चिन्ताग्रस्त चेहरे पर दृष्टि गड़ाए हुए थी। मन कह रहा था कि कोई अशुभ समाचार है। राजा ने आज्ञा दी तो सेनापति बोल पड़े थे, "एक विस्मयकारी घटना हुई है देव ! जिस बाल-घातिनी स्त्री को नंदसुत के वध हेतु भेजा गया था, उसके प्राण बालक ने ही हर लिए !"

"बालक ने ?"

अस्ति-प्राप्ति ने चकित होकर एक-दूसरे को देखा। लगा कि सेनापति कुछ गलत बोल गए हैं। पूतना-वध और उस गोद के बालक द्वारा ? असंभव !

राजा ने भी यही कहा था, "असंभव !" सहसा हंसने लगे थे वह, "आप जैसे समझदार लोग भी ऐसी हास्यास्पद सूचना पर विश्वास कर सकते हैं ? आश्चर्य !"

"सूचना पाकर हमे भी यही लगा था राजन् !" प्रद्युम्न ने जैसे अपमान से तिलमिलाकर उत्तर दिया था, "किन्तु सत्य यही है ! प्रमाण साथ लाए हैं हम लोग !" इसके पूर्व कि कंस कुछ कह सकें, उन्होंने प्रहरी को संकेत कर दिया था। अगले ही क्षण गोकुल भेजे गए, उन दो भयभीत सैनिकों को लेकर प्रहरी उपस्थित हुआ। सेनापति बोले थे, "यह पूतना के साथ भेजे गए थे राजन् ! उसकी सुरक्षार्थ ! इन्ही से सारी कथा सुन लीजिए !"

कंस ने आज्ञा दी थी। सैनिकों मे से एक ने असहज स्वर और भयभीत मुद्रा में पूतना-वध की घटना सुनाई। सुनकर कंस, अस्ति और प्राप्ति सभी अचरज और अविश्वास के सागर मे गहरे और गहरे उतरते चले गए। उस बालक को दूर तक पूतना के स्तन से शरीर के अविभाज्य अंग की तरह जुड़े देखा था उन्होने। वह देर तक उसे छुड़ाने के प्रयत्न मे दौड़ती, उछलती, चीखती हुई करुण पुकारें लगाती रही थी। किन्तु बालक था कि हट ही नही पा रहा था। लगता था कि किसी चमत्कार को देख रहे हैं सैनिक। ठगे, सहमे और कांपते हुए खड़े रह गए थे। फिर पाया था कि पूतना के स्तनो से लहू की अनेक धाराएं बहने लगी हैं। वह पृथ्वी पर

गिर पड़ी है। हाथ-पैर मार रही है, छटपटा रही है, किन्तु बालक फिर भी चिपका हुआ है !

विवरण के हर शब्द के साथ गहरे और गहरे अथाह सागर में उतरते हुए ! एक-दूसरे को देखा भी था उन्होंने। प्राप्ति ने पाया था कि महाराज कंस के उज्ज्वल चेहरे को सहसा किसी काली, अमावसी रात्रि के अंधकार ने ग्रसना प्रारम्भ कर दिया है। वह अपने-आप को अपने से ही छुपाने का प्रयास कर रहे हैं। अस्ति अस्त-व्यस्त, स्तब्ध खड़ी हुई उन सैनिकों को देखे जा रही है !

स्वयं प्राप्ति ? उसकी भी तो यही स्थिति थी ? रोमांचक घटना का वह क्रूर स्मरण इस समय भी प्राप्ति के मन को हिलाए हुए है। जब-जब स्मरण करती है, इसी तरह मन हिल उठता है ! जी हुआ था कि अविश्वास कर ले ! उस समय सब ने यही कहा था— कंस, अस्ति और स्वयं प्राप्ति ! यही माना था उन्होंने ! राजा बोले थे, "नहीं-नहीं, यह असंभव है ! नितान्त अस्वाभाविक ! इतनी विचित्र शक्ति उस साधारण बालक में कैसे और कहां से आ सकती है ? निश्चय ही इन सैनिकों को भ्रम हुआ होगा। पूतना की मृत्यु का कारण कोई और हो सकता है ! हो सकता है कि जिस मारक विष को उसने अपने शरीर से लगाया था, वही उसके लिए घातक सिद्ध हुआ हो !"

"किन्तु यादवेन्द्र..." प्रद्युम्न ने बोलना चाहा था कुछ। कंस ने उन्हें ही नहीं, उस सारी स्थिति को अस्वीकार दिया— आसन से उठ खड़े हुए थे, "महामंत्री ! क्या आप जैसा अनुभवी और बुद्धिमान व्यक्ति भी इस तरह के चमत्कार पर विश्वास कर सकता है ? मानने का मन नहीं होता। यह सब संयोग है ! उसे चमत्कार कहकर अपने-आप को आतंकग्रस्त मत कीजिए !"

"निस्संदेह !" अस्ति ने उनके विचार में सहयोग दिया था। प्राप्ति की भी इच्छा हुई थी कि उस असहज और अस्वाभाविक लगने वाली घटना को नकार दे, किन्तु होंठ नहीं खुले। केवल गहरा श्वास लेकर बोली थी वह, "बहुत विश्वास नहीं होता, महाराज ! यह कैसे हो सकता है कि वह अबोध शिशु, एक शक्तिशाली स्त्री को इस तरह हत करे, जिस तरह

शरन् ‿ ^

वर्णित किया जा रहा है ?"

कंस ने अपने विचार पर रानियों की सहमति पाकर जो बिखरा हुआ साहस संजो लिया, बोले, "इन मूर्ख सैनिकों को सेवा मुक्त कर दें, सेनापति ! ऐसे लोग राज्य, सुरक्षा, नीति और सेवा सभी के लिए व्यर्थ हैं। हटाइए इन्हें हमारे सामने से !"

केशी ने गहरा श्वास लिया। फिर सैनिकों को वाहर जाने का संकेत कर दिया। प्रद्युम्न चुप हो चुके थे। महाराज कंस सभागार की ओर बढ़ गए। अस्ति और प्राप्ति ने अन्तःपुर के मुख्यद्वार से उनकी विदाई के समय मुस्कराना चाहा था, किन्तु लगा था कि मुसकरा नहीं सकी हैं।

कम-से-कम अस्ति जानती है कि वह नहीं मुसकराई थी। कैसे मुसकराती ? इस पल भी स्मरण है उसे। पूतना-वध की अद्भुत घटना को अस्वीकार देने के बाद भी मन उसे अस्वीकार नहीं सका था !

किन्तु आज लगता है कि वह अस्वीकार ही बहुत बड़ी भूल थी ! और केवल वही क्यों अनेक बार, जिस तरह की घटनाओं के समाचार गोकुल से मिलते रहे थे। नंदसुत को लेकर चमत्कारिक घटनाएं सुनने में आती रही थीं—तब भी प्राप्ति वही भूल किए गई। और जब तक भूल सुधारी, तब तक बहुत कुछ घट चुका था ! महाराज कंस, अपने क्रोध, उद्दंडता, दमन और अनाचार की उस सीमा पर जा पहुंचे थे, जहां से उनकी वापसी असंभव हो चुकी थी। वापसी तो दूर, वापसी का विचार भी असंभव हो गया था ! बस, लगता था कि काल-निमंत्रण हर घटना के पास और पास आता जा रहा है।

निस्सन्देह काल-निमंत्रण ही था वह ! गोकुल के उस असामान्य गोप-बालक को लेकर जो कुछ सुनने-जानने को मिला था—उसी ने प्राप्ति के मन में यह विश्वास गहराया था कि वह बालक जन-क्रांति का कारण बनेगा ! अस्वाभाविक शक्ति, असामान्य क्रीड़ाएं, असहज क्रियाएं, अति-

मानवीय व्यवहार और आश्चर्यजनक कथाएं···यही सब यशोदासुत की थी ! देखा नहीं था उसे, किन्तु सुना बहुत था उसे लेकर—सुनने की इच्छा उस समय हुई थी, जब पूतना वध ही नहीं, क्रमश: तृणासुर (तृणावर्त), बकासुर और वत्सासुर मारे गए।

पूतना वध को लेकर जो सुनने-जानने को मिला था, कुछ उसी तरह उन सबके वध-समाचारों की सूचना मथुरा तक आई थी। उस समय तक ये सूचनाएं नहीं रह गई थीं। जनसूचनाएं और चर्चाएं बन चुकी थीं। कहा जाने लगा था कि यशोदा का पुत्र असामान्य है। उसमें ईश्वरीय शक्तियां उपस्थित हैं ! वह मनुष्य नहीं है ! मानवीय लीलाएं कर रहा है !

प्राप्ति के भीतर भी तो विश्वास गहन होने लगा था। कैसे न होता, उन घटनाओं का हर शब्द, हर अंश निरंतर चकित कर देनेवाला था। वर्णन की गई बातों के अतिरिक्त हर घटना के बीच उस बालक की सहजता किसी भी मनुष्य को असहज कर सकती थी।

किन्तु अस्ति ? वह उस तरह विचारने को तैयार न थी। किसी क्षण भूल नहीं पाती थी कि वह जरासन्ध की पुत्री और मथुराधिपति की महारानी है ! किसी पल मन शान्त रहकर सोचता नहीं था। सोच पाती होती तो प्राप्ति के प्रस्ताव को क्यों अस्वीकार करती ?

केवल यही तो कहा था प्राप्ति ने, "बहिन ! गोकुल के उस गोप बालक को लेकर जितना कुछ सुनने-जानने को मिल रहा है, उससे प्रकट होता है कि वह असाधारण है ! महाराज कंस चाहें तो इस समय भी उस बालक को बुलाकर वार्ता कर सकते हैं !"

"कैसी वार्ता ?" अस्ति ने कुछ तीखे, लगते हुए शब्दों में पूछा। प्राप्ति समझ गई थी। बहिन को उसका प्रस्ताव तनिक भी नहीं रुचा है। फिर भी मन में आई बात कह डालना ही उचित समझा था उसने। कहा भी, "देवी ! यशोदासुत अपनी अद्भुत क्रियाओं से जितनी चर्चा पा चुका है, उससे सावधान हो जाना नीति है। मथुराधिपति के लिए यही उचित होगा कि वह पुन: गणतंत्र की व्यवस्था की रचना करें ! महामंत्री वसुदेव और देवकी को कारावास से मुक्ति दें और पूज्य उग्रसेन को उनका आसन

सौंप दें। इस तरह संभव है कि उस बालक के प्रति जनमानस के झुकाव में कमी आ जाए!"

अस्ति ने उत्तर में केवल थूकती हुए हंसी के साथ 'उंह' का उच्चारण किया और अपने भवन की ओर चली गई! प्राप्ति जानती थी यही होगा! न बुरा लगा था उसे, न अस्वाभाविक। सन्तोष अवश्य हुआ था कि उसने जो कुछ कहा है, वह कहकर उचित किया है।

□□

कभी सोचा था कि कंस संभवतः स्वयं ही उन असामान्य घटनाओं के कारण विचार करने के लिए बाध्य हो जाएंगे। हो सकता है कि एक दिन वह उस बालक को हत करने की दुश्चेष्टा से मन को मुक्त कर लें! आत्मानुभव ही उन्हें सावधान करे कि वह उस बालक से नहीं जूझ रहे हैं, भाग्य से जूझ रहे हैं! पर वैसा समय कभी नहीं आया। कंस पूर्ववत् वही सब करते गए थे। प्राप्ति को लगता था कि वह अपनी आंखों से कम, दुष्ट केशी और दुर्बुद्धि प्रद्युम्न की आंखों से अधिक देखते हैं। एक बार उन्हें समझाने का प्रयत्न भी कर बैठी थी वह। ज्ञात नहीं था कि कंस भी अस्ति जैसी 'ऊंह' के साथ दो शब्दों में उसके सुझाव को ठुकरा देंगे! जानती तो अपने-आप को उस तरह अपमानित कभी न करवाती!

वह दिन भी स्मरण है प्राप्ति को। महाराज कंस उस दिन बहुत व्यग्र थे। बकासुर-वध की सूचना ने अत्यधिक खिन्न कर दिया था उन्हें। स्वभाव में विचित्र सा परिवर्तन आने लगा था। लगता था कि हर प्रयत्न की असफलता उन्हें उत्तेजित ही नहीं, अनियंत्रित किए जा रही है, स्वयं से अनियंत्रित!

और केशी था कि हर दिन नया षड्यंत्र, नयी योजना लेकर उपस्थित हो जाता। हर बार विश्वास दिलाता हुआ, "निश्चित हो, यादवराज! इस बार अवश्य ही वह दुष्ट यशोदासुत मारा जाएगा! बालक में यह योद्धा नहीं है, छली है!"

बस उस नये षड्यंत्र की आज्ञा दे देते। असफलता मिलती, उद्विग्न हो जाते! बकासुर-वध की घटना ने भी उन्हें इसी तरह उद्विग्न किया।

संयोग ही था कि वह अस्ति के शयन-कक्ष में न जाकर प्राप्ति के पास जा पहुंचे थे। प्राप्ति ने निश्चय कर रखा था, राजा को अपने सौन्दर्य, व्यवहार और वाणी से तृप्त करके मन की बात कहेगी। विश्वास था महाराज कंस बहुत नहीं तो अंशरूप में उसकी बात का सम्मान करेंगे! यही किया था।

दिव्य भोजन से तुष्ट कर पति को शय्या-सुख दिया था प्राप्ति ने, फिर जब वह तनिक सहज हुए तब बोली थी, "आज्ञा दें तो एक निवेदन करूं, महाराज?"

"कहो, देवि?" कंस करवट लिए हुए थे!

"देखती हूं कि सेनापति केशी और प्रद्युम्न प्रतिदिन ही गोकुल के उस छली बालक को लेकर कोई-न-कोई अशुभ समाचार ले आते हैं। क्या राज्य में अन्य कोई कार्य शेष नहीं रहा है उनके पास?" प्राप्ति ने कहा था।

अलसाये हुए कंस ने पलकें खोल दीं। राज्य, सत्ता और नीति की बात उन्हें कभी किसी पल असहज नहीं रख पाती थी। पूछा, "मैं समझा नहीं प्राप्ति! कहना क्या चाहती हो?"

प्राप्ति ने बात सीधी और स्पष्ट कर दी, "राजन्! क्या मथुरा गण-संघ में अन्य कोई समस्या शेष नहीं रही है जो सेनापति और महामंत्री की चिन्ता का कारण बने? उस छली बालक को इतना महत्त्व क्यों दिया जा रहा है?"

कंस सहसा उठ बैठे। पत्नी की ओर टकटकी लगाये कुछ क्षण देखते रहे, फिर उदासीनता व्यक्त करते हुए उठ पड़े। कहा था, "देवि! हम तुम्हारे पास कुछ पल शान्ति पाने की इच्छा से आए थे। किन्तु हमें लगता है कि तुम स्वयं ही अशान्त हो! तुम्हारे लिए शान्तिदान संभव नहीं।"

"देव!" अकुलाकर प्राप्ति ने कहा था, किन्तु राजा उस बीच द्वार तक जा पहुंचे थे। प्राप्ति रुआंसी हो गई थी, "मुझे क्षमा करें, प्रभु! भूल हुई!" किन्तु कंस ने नहीं सुना—चले गए।

प्राप्ति को स्मरण है, उस दिन रोती-सिसकती रह गयी थी वह। और केवल उसी दिन क्यों, अनेक बार इसी तरह पति के उद्दंड, क्रोधी

हुआ ?"

किसी अन्य ने कहा, "गोकुल के गोप प्रमुख नंद के पुत्र ने बहुत उत्पात मचा रखा है। राज्य के अनेक योद्धा मार डाले हैं। ऐसा छली, धूर्त और षड्यंत्रकारी बालक है कि लोग उसके नामस्मरण-भर से चौंक जाते हैं ! मथुराधिपति उसी को लेकर बहुत चिंतित और व्यग्र हैं !"

उत्तर में ऋषि ने राजा को पुन: देखा। मुसकुरा पड़े। कहा था, "विचित्र बात है ! जिस बालक के जन्म को लेकर मथुरावासियों को प्रसन्न होना चाहिए, उसी को लेकर दुखी हो रहे हैं !"

चकित हुए लोग। अक्रूर ने प्रश्न किया, "वह कैसे महाराज ?"

"वह ईश्वर है !"[1] वेदव्यास बोल पड़े थे। स्वर इस तरह गूंजा था जैसे ओंकार का उच्चारण किया हो उन्होंने। लगा कि समूचे वातावरण ने उस स्वर को संगीत दिया है !

कंस ने जबड़े कस लिए। उद्दतापूर्वक उठकर ऋषि की अवहेलना करनी चाही थी, किंतु व्यास ने रोक दिया था उन्हें, "मुझसे कहा गया है यादवेन्द्र कि नंदसुत ने उत्पात मचा रखा है। अनेक योद्धाओं का वध कर दिया है। क्या यह सत्य है ?"

मथुराधिपति ने उत्तर में नकार के भाव से देखा था उन्हें।

ऋषि अप्रभावित रहे। कहा, "संकोच न करो, राजन् ! कहो कि

---

१. महर्षि वेदव्यास ने 'महाभारत' के आदिपर्व (६३ वें अध्याय, श्लोक क्रम—९८ से १०२ के बीच) में श्री कृष्ण को ईश्वर स्वीकारते हुए लिखा है— 'त्रिलोक-पूजित भगवान नारायण संसार की भलाई के लिए वसुदेव के यहां देवकी के गर्भ से प्रकट हुए। उन्हीं को सब लोग अनादि, अनंत, देवदेव, जगत्स्वामी, अव्यक्त, अक्षर-ब्रह्म, त्रिगुणमय प्रधान तत्त्व, मायारूप, प्रभु, पुरुष, विश्वकर्मा, हंस, नारायण, विधाता, परमात्मा आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। वे ही धर्म-स्थापनार्थ अन्धक-वृष्णि वंश में उत्पन्न होकर कृष्ण नाम से प्रसिद्ध हुए।' यों व्यास ने जहां-जहां श्री कृष्ण-संबंधी कोई घटना कही है उन्हें ईश्वर ही कहा है।

यह असत्य है। सत्य यह है कि उन दुष्टबुद्धि योद्धाओं ने उस बालक का वध करना चाहा था। वे अपनी दुचेष्टा के कारण ही हत हुए !"

मथुराधिपति चले गए थे। वेदव्यास हस दिए। बात आई-गई हो गई थी। पर प्राप्ति के लिए आई-गई नहीं। न उस क्षण आई-गई हुई थी, न अब हो सकी है। लगता है कि ऋषि के वे शान्त शब्द और उसके बाद उनकी रहस्मय हसी इस समय भी प्राप्ति के कानों में गूज रही है। वह हसी ही थी या मथुराधिपति के दुर्दंभ पर व्यंग्य ? निस्सन्देह व्यंग्य ही था। ऐसे हर समय भी यही हसी प्राप्ति ने सुनी है, जब कान्हा कहे जाने वाले उस बालक की कोई अद्‌भुत लीला सुनी है।

सच ही कहा था ऋषि ने। मनुष्य नहीं है वह बालक—मानवेतर शक्ति है ! उनके शब्दों मे ईश्वर ! वैसा न होता तो वैसी अद्‌भुत घटनाओं का क्रम बंधता ?

अनचाहे ही प्राप्ति पुनः पूतना-वध के बाद की घटनाओं को याद करने लगी है। एक के बाद एक अद्‌भुत घटनाएं। एक के बाद एक असामान्य कथाए। पहली बार की घटना संयोग कहकर बिसरा दी गई थी, फिर दूसरी घटना हुई ! तृणावर्त वध की घटना !

□□

कब, कैसे, किसने भेजा था तृणावर्त को—प्राप्ति नहीं जानती, किन्तु सब यही कहते थे कि महाराज कस का पठाया हुआ था वह। नाम कुछ और था उसका, किन्तु अपनी विशिष्टताओं ने उसे तृणावर्त नाम दिया था।

प्राप्ति को सारी घटना सुनने को मिली थी विश्राति से। वही तो थी जो राजभवन से बाहर तक की घटनाओं और जन-चर्चाओं को उस तक ले आती थी। उस दिन सन्ध्या समय सहमती हुई-सी आकर प्राप्ति के सामने खड़ी हो गई थी। चेहरे पर चिन्ता और भय लिखा हुआ था। आखो में आतंक अकित !

प्राप्ति कुछ समय पूर्व ही साज-शृ गार भवन से आई थी। सुना था कि महाराज कस संभवत. अन्तःपुर की ओर आयें। और उनका अन्तः-

धार है !"

तृणावर्त असुर ! नाम सुना-जाना हुआ था प्राप्ति का। किन्तु मायावी शक्तियों से पूर्ण उस दुःसह असुर का वध किसने किया होगा ? और कैसे ? सुनने की अजब-सी चाह मन में उभर आई। पूछा, "किसने हत किया उसे ?"

"जिसने हत किया देवि, उसका नाम सुनकर विश्वास नही होता, किन्तु यही सत्य है ! गोकुल से सैनिक यही समाचार लाए हैं !" विश्रांति ने उत्तर दिया। लगा कि उत्तर देते समय वह भी घोर विस्मय के सागर मे डूब-उतरा रही थी।

"पर किसने ?" जोर से पूछ बैठी थी प्राप्ति !

"उसी बालक ने देवि, जिसने पूतना का वध किया था !" विश्रांति ने उत्तर दिया। बैठी नही थी, पर प्राप्ति को लगा कि बैठकर अविश्वास-पूर्ण शब्दो मे गुनगुनाई है।

प्राप्ति बोल नही सकी। या बोलने की मनःस्थिति ही नही रही थी ? एक बार फिर अविश्वसनीय घट गया था ! नितान्त अमानवीय ! अथवा अति-मानवीय ! माया पर एक और माया ! असुर का वध और उसी दुधमुंहे बालक द्वारा। कुछ पल अपने-आप को सहेजने-सवारने और संयत करने में लगे। फिर पूछा था, "मुझे सारा विवरण सुना विश्रांति ! उस बालक ने विशालदेह, शक्तिसम्पन्न असुर को कैसे मारा होगा ? या कि वह मर ही गया ?"

"नही, देवी ! उसे बालक ने ही मारा है !" विश्रांति ने उत्तर दिया था— "सभी यह कह रहे हैं ; गोकुल से आए सैनिकों ने भी यही सूचना दी है ! जिस तरह दी है, वह भी अपने-आप मे कम विस्मयकारी नहीं है।"

"मुझे सुना !" प्राप्ति जैसे ऊबने लगी थी विश्रांति की भूमिका से। और विश्राति ने कह सुनाया था। सैनिको की सूचना का शब्दश वर्णन करने लगी थी वह। प्राप्ति को लगा था कि सारी घटना चित्रांकित हुई जा रही है। हर शब्द के साथ अविश्वास से खूब-खूब भरती हुई। हर पल अपने ही भीतर उस सब पर विश्वास करने की चेष्टा करती हुई।

विश्रांति ने प्रारंभ किया था, "महाराज कंस ने विशेष रूप से असुर तृणावर्त को गोकुल भिजवाया था। वह कैसे क्या कुछ करता है, यह देखने-जानने केलिए। पीछे सैनिक भी लगा दिए थे। तृणावर्त अपनी मायाशक्ति के साथ गोकुल पहुंचा।

□□

उस रात्रि तेज आंधी-तूफान था। मथुरा से रवाना हुआ असुर तृणावर्त निश्चिन्त। विशालदेह पुरुष था वह। वैसी ही शक्ति। माया ने इस शक्ति को असीम कर दिया था। बहुत समय से मथुरा मे बसा हुआ था उसका परिवार। जब यहा आया, तब कल्पना लेकर आया था कि व्यवसाय करेगा. पर जल्दी ही समझ लिया था— धन, वैभव और सुख-शान्ति की कमी नही है आर्यावर्त मे। लगा कि यही बस जाना उपयुक्त रहेगा। यही किया। विशिष्ट मायावी शक्तियां उसके पास थी। सभी ने उसे सम्मान दिया। मथुराधिपति ने राज सेवा मे ले लिया।

इसी राजसेवा के अन्तर्गत उसे आदेश मिला था— उस अद्‌भुत बालक के वध का! बालक को लेकर जो सुना-जाना था उसने उसे भी कम चमत्कृत नही किया था, किन्तु बाद मे अनुभव हुआ कि मात्र सयोग रहे है, जिन्होने बालक से जुड़ी घटनाओं को अद्‌भुत बना दिया है। यही कारण था कि जब उसे बालकृष्ण के वध का दायित्व सौंपा गया तो हस-कर कहा था उसने, "आश्चर्य है सेनापति! आप मुझे उस बालक के वध हेतु भेजना चाहते हैं?"

केशी ने उत्तर दिया था, "वह बालक ईश्वर कहा जाता है!"

"पर वह ईश्वर नही है!" तृणावर्त ने उत्तर दिया था, "यो भी आर्यो का देवता विष्णु भी ईश्वर नही है। ईश्वर अशूर है। उसे नीदो भी

कहते हैं ![1] वह आश्चर्यजनक शक्तियों का स्वामी है !"

केशी ने अरुचि प्रकट की थी। बोला, "तृणावर्त ! यहां हमने तुम्हें ईश्वर कौन है और कौन नहीं है —यह तर्क-वितर्क करने नहीं बुलाया, केवल राजसेवा सौपने के लिए बुलाया है। महाराज कंस चाहते हैं कि उस बालक का वध तुम करो !"

"जैसी आपकी इच्छा, सेनापति !" तृणावर्त ने दंभपूर्वक सिर हिलाते हुए स्वीकार किया, फिर चल पड़ा था।

यमुना पार करके तृणावर्त ने निश्चित भाव से बस्ती की दिशा पकड़ी। वायुवेग तीव्र था। रात्रि का समय। तृणावर्त ने एक विशाल वृक्ष की ओट में बैठकर वह रात्रि बिताई। भोर हुए बस्ती में पहुंचा। आंधी-पानी उस समय भी जन-जीवन को अस्त-व्यस्त किए हुए थे, किन्तु ग्राम जीवन की गति में अन्तर नहीं पड़ा था। प्रकृत के सहज व्यवहार के आदी थे सब। हर दिन की तरह वे नियमित जीवन जुटाये हुए थे।

गोप प्रमुख के घर का पता ज्ञात करने में बहुत असुविधा नहीं हुई। सभी ग्रामवासी अपने-अपने कामों में इतने व्यस्त थे कि असुर की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। यों भी नगर, ग्राम, जंगलों से विजातीय विदेशियों का आना-जाना निकलना, कोई नई बात नहीं थी। आर्यावर्त में अनेक देशों के लोग व्यापार हेतु आते-जाते रहते थे। उनका आवागमन सहज हो चुका था।

महाराज कंस के भेजे गुप्तचर निरंतर ग्रामीण वेश में तृणावर्त के पीछे रहे थे। यह कार्य बहुत रुचिकर नहीं था, किन्तु अरुचि भी नहीं हुई

---

१. अशूर और नीबो। द एजुकेशन बुक कम्पनी लि०, लंदन द्वारा प्रकाशित एनसाइक्लोपीडिया, खंड ६ में वर्णित है कि असुर (विष्णु के नहीं) जिन देवताओं के पूजक थे उनमें अशूर, जो पंखवाले गरुड़ जैसा है, उनका मुख्य देवता था। एक अन्य देवता का नाम नीबो बतलाया गया है। इसे भी भगवान् ही कहा गया है। नीबो और और अशूर दोनों के ही भित्तिचित्र असीरियन सभ्यता में मिले हैं। ये चित्र 'ब्रिटिश म्यूजियम आफ एंशिएंट आर्ट' में सुरक्षित है।

थी इससे। सुना बहुत था नंद के अद्‌भुत बालक को लेकर ! अब देखना था कि असुर की आसुरी शक्ति के सामने वह बालक क्या कर पाता है ?

एक का नाम था अभिजीत। साधारण सैनिक था वह, किन्तु चतुरता, चपलता और वाक्पटुता के कारण गुप्तचर धर्म निबाहने के लिए प्रसिद्ध था। जिस क्षण तृणावर्त ने नद गोप के घर पहुचकर विनीत स्वर में पुकारा था, "कोई है ? मुझे शरण चाहिए।" उस क्षण दूर एक ओर खड़ा अभिजीत साथी को बांह से थामकर रुक गया था।

□□

आगन मे एक स्त्री-मूर्ति प्रकट हुई। दृष्टि, भाव, मुद्रा सभी से प्रकट हुआ कि गृह-स्वामिनी है। अभिजीत ने याद किया था नदपत्नी का नाम—यशोदा ! यही कहते हैं उन्हें ! सुना भी था कि बहुत सरलहृदया नारी हैं। देखते ही समझ लिया वही होगी।

यशोदा आगन से बढ़कर बाहर द्वार तक आयी। तृणावर्त के सामने खड़ी हो गयी। पूछा, "कौन है आप ?"

"मै विदेशी हू, देवि !" तृणावर्त का रूखा स्वर आश्चर्यजनक रूप से मिठास से भर उठा था। अभिजीत को हैरानी हुई। आश्चर्य ! मायावी असुर स्वर बदलने मे भी पारंगत हैं। वह कह रहा था, "प्रकृति विपरीत है और मुझे आगे जाना है। क्या कुछ समय के लिए शरण देंगी देवि ?"

यशोदा ने स्वागत के स्वर मे कहा था, "आओ, अतिथि ! स्वागत है। आपकी सेवा करके प्रसन्नता होगी।"

तृणावर्त देवी यशोदा के पीछे-पीछे चला। अभिजीत और साथी सैनिक सरककर आगे बढ़ आए। ऐसी जगह खड़े हो गए, जहा से नंद-गृह के आंगन का दृश्य स्पष्ट देख सकें। बस्ती के गोप पुरुष गौएं चराने निकल चुके थे। वृद्ध और बालक घरो मे बन्द थे। स्त्रिया गृहकार्य में व्यस्त। मार्ग सन्नाटे से भरे हुए। इस सन्नाटे को यदि कोई अनवरत स्वर तोड़ हुए था तो वह थी वर्षा। हवा कम थी, किन्तु पानी लगातार बरस रहा था। धरती जहा-तहा छोटे-छोटे जल-कुडों मे बदली हुई।

तृणावर्त को बरामदे मे आदरपूर्वक बिठा दिया था यशोदा ने। एक

ओर सुन्दर झूला टंगा था। हौले-हौले हिलता हुआ। अभिजीत ने अनुमान लगा लिया—वह अद्भुत बालक संभवतः झूले में ही है। अनुमान दृढ़ उस समय हुआ जब यशोदा भीतर जाते हुए हौले से झूले को हिला गई।

असुर झूले को टकटकी बांधे देखने लगा। अभिजीत और उसका साथी सैनिक उत्सुकता से दृष्टि गड़ाए रहे—अब क्या होता है? असुर किस तरह उस बालक का वध करेगा? वर्षा की फुहारें कुछ हलकी होने लगी थी। तभी अभिजीत ने देखा था कि यशोदा भीतर से पात्र में कुछ लेकर आई—आदरपूर्वक असुर के सामने रख दिया। असुर प्रसन्न हुआ। पात्र ग्रहण करके उसने उसका तरल पदार्थ उदरस्थ किया, फिर निश्चिन्त होकर बैठ रहा। यशोदा पुनः भीतर चली गई।

अभिजीत के हृदय की धडकन बढती जा रही थी। बस अब असुर सक्रिय होगा। इस विचार से मन कुछ बिगड़ भी जाता कि वह एक अबोध शिशु का वध करेगा! किसी भोले और अति-सुन्दर बालक का वध देखना अपने-आप मे एक घिनौनी कल्पना है—दर्शन तो दूर! किन्तु बेबसी। यह करना अभिजीत और उसके साथी की सेवा का अंग है। उनका दायित्व! एक तरह से धर्म!

अभी और कुछ सोचें, तभी चौंक गया था वह। असुर तृणावर्त अपने स्थान से उठा—उसने चोर दृष्टि से यहां-वहां देखा, फिर झूले के पास जा पहुंचा। बालक को उसने हाथों में उठाया और अगले ही पल तेज आंधी चलने लगी। असुर तृणावर्त की दृष्टि अस्वाभाविक रूप मे बदल गई थी। लगता था कि वह अंगारो की तरह जलने लगी है। अभिजीत का हृदय जोरों से धड़कने लगा। तेज और तेज। सहसा तृणावर्त के गिर्द तीव्रगति हवा का एक चक्र बनना प्रारंभ हुआ। तृणावर्त की विशालदेह इस चक्र में धुंधलाने लगी। और उसी क्षण यशोदा भीतर से बाहर आई। हड़बड़ाकर वह पालने की ओर बढ़ी—चीखी, "कन्हैया!" पर वायुचक्र इतना तीव्र था कि एक जोरदार धक्का खाकर एक ओर गिर पड़ीं!

"हे ईश्वर! कैसी भयावह माया!" अजाने ही अभिजीत के होंठों से बुदबुदाहट फूट पड़ी!

तृणावर्त की विशाल देह धुंधलाती-धुंधलाती आकाश की ओर उठने

लगी थी। उसीके साथ बालक कृष्ण भी हवा में उठता हुआ।'

यशोदा ऊपर की ओर देखती हुई बाँहें फैलाए चीख रही थी और चक्रवात में उलझी तृणावर्त की धुंधलाती देह कन्हैया को ऊपर और ऊपर उठाए ले गई! अनेक घरों के द्वार खुले। यशोदा की चीखें सुनकर बहुत-सी गोपियां बाहर निकल आईं! उन्होंने भी वही दृश्य देखा। उसी तरह भयातुर। जिस तरह अभिजीत और उनका साथी देख रहे थे!

क्या करेगा वह दुष्ट असुर? अभिजीत ने घबराहट के साथ सोचा था—क्या वह बालक को आकाश से नीचे फेंक देगा? किसी विशाल शिला पर? अथवा वृक्ष पर? जो भी होगा, उसकी कल्पना ही सिहरा डालने वाली थी।

"कन्हैया! मेरे कान्हा को कोई बचाओ! हे भगवान्! रक्षा करो उसकी! यह कैसी माया है? कौन दुष्ट था वह जो अतिथि बनकर आया और बालक का अपहरण किए जा रहा है? कोई है?" यशोदा चीखते-चीखते रोते-कलपते अब सिर धुनने लगी थी। न वस्त्रों का ध्यान रहा था उन्हें, न ही अपने शरीर का!

तृणावर्त बालक को लेकर ओझल हो चुका था! दूर तक गोपियां उसका पीछा करती गई थीं—किन्तु चक्रवात उनकी आंखों से परे हो गया, बहुत ऊपर! असुर अपने मायाजाल में बालक कृष्ण को लेकर गुम चुका था। एक वृक्ष की ओट में खड़े अभिजीत और सैनिक देखते रह गए थे। जकड़े कसे हुए! अब आगे क्या होगा? या कुछ होना ही नहीं है? उनके इर्द-गिर्द गोपियों की आकुल पुकारें और रोदन बिखरा हुआ था। वर्षा की तरह निरन्तर। 'कन्हैया! कन्हैया! गोपाल!' पर स्वर खोखला! अनन्त आकाश में उसी तरह गुमता हुआ, जिस तरह कान्हा उस असुर के साथ गुम चुका था।

---

१. श्रीमद्भागवत (दशम स्कंध) में वर्णन है—'कंस का भेजा हुआ तृणावर्त नामक असुर वायु के बगूले का स्वरूप बनाकर आया और कन्हैया को उठा ले गया।' आगे वर्णित है, 'पवन चलने से रुक गई, वर्षावेग शान्त हो गया, तो भी श्री कृष्ण नहीं मिले।'

आंखों से लहू रिसता हुआ।

अभिजीत ने यहां-वहां देखा— कोई नहीं था। हौले से बालक को हटाने के लिए हाथ बढाए। पर यह क्या ? बालक इतना वजनी कैसे हो गया ? हटाना तो दूर, उसे हिला पाने में भी अभिजीत ने अपने-आप को अक्षम अनुभव किया। निश्चय ही अद्भुत ![1]

असुर तृणावर्त के होठों से स्वर फूटे थे। बिखरे-बिखरे ऐसे, जैसे स्वर भी गिर रहे हों, "यह यह बालक अद्भुत ही है ! महाराज कंस से कहना, इसके अहित की चेष्टा•• आह !ओ•• " शब्द पूरे किए थे उसने, "ना करें !" असुर श्वासहीन हो गया !•••

अभी अभिजीत कुछ सोच-समझ पाए कि तीव्र शोर से घबराकर उसने एक ओर देखा। गोप-गोपियां दौड़े चले आ रहे थे।

अभिजीत और उसका साथी गिरते-पड़ते तुरन्त वृक्षों की ओट में हो गए ! भाग खड़े हुए ! पर भागने से पूर्व एक और चमत्कार भी देखा था उन्होंने !

□□

उसी की तरह किसी गोप ने कान्हा कहे जाने वाले उस अद्भुत बालक को उठाने का प्रयत्न किया था। लगा कि खीचने का प्रयत्न कर रहा है। फिर जैसे शिला को धकेलने-सी चेष्टा। सहसा हांफने लगा था गोप। बड़-बड़ाया था, "कान्हा शिलावत् वजनी हो गया है ! इसे उठाना असंभव।"

हारकर हाथ खींच लिए थे उसने ! अन्य गोपों ने भी वैसा ही किया। फिर आश्चर्य और अविश्वास से बालक को देखते हुए खड़े रह गए थे। तभी दूसरा झुंड दौड़ा हुआ आ पहुंचा। उसमें नन्द और यशोदा थे। यशोदा ने बालक को देखते ही बाहें बढा दी थी और अगले ही क्षण फूल की तरह

---

१. श्रीमद्भागवत (दशम स्कंध) में वर्णन आया है कि श्री कृष्ण के भार को न सह सकने के कारण ही असुर तृणावर्त आकाश से उन्हें लिए हुए पृथ्वी पर गिरा। यह भी कहा गया है कि बालक श्री कृष्ण असामान्य रूप से वजनी हो गए थे—ठीक किसी शिला की तरह।

उठाकर उसे हृदय से लगा लिया !

अभिजीत अनायास ही बुदबुदा उठा था, "निस्संदेह अद्भुत ! अलौकिक !" थरथर-कांपते हुए वे मथुरा की ओर लपक पड़े थे। यथाशीघ्र वे मथुरा पहुंच जाना चाहते थे। वह समूची घटना किसी अन्य लोक की घटना की तरह सुना देना चाहते थे। उतावली ने उनके पैरों को आश्चर्यजनक गति दे दी थी।

□□

पूतना-वध का दृश्य देखकर आए सैनिकों की ही तरह हड़बड़ाए हुए वे उपस्थित हुए थे ! प्राप्ति को वह स्मरण भी है। उन सैनिकों से अधिक भयभीत थे वे। कारण भी था। असुर तृणावर्त का मृत्युपूर्व कथन भी सुना था उन्होंने !

प्राप्ति और अस्ति दोनों मूक भाव से एक ओर बैठी सुनती रही थीं। केशी और प्रद्युम्न महाराज कंस के आसन से दूर खड़े हुए थे ! उनसे कुछ परे वे भयभीत, चिन्तित थके हुए बदहवास सैनिक।

अभिजीत ने कहा था, "महाराज ! वह बालक, जिसे सब कान्हा या कन्हैया कहते हैं, सभी गोकुलवासियों में प्रिय है ! विलक्षणताएं भी उसमें हैं। जिस क्षण तृणावर्त उसे लेकर वायुमार्ग से आकाश में चला गया था, उस समय हम लोग यही समझे थे कि बालक हत हुआ, किन्तु थोड़े ही समय बाद वह तृणावर्त सहित पृथ्वी की ओर गिरने लगा !"

"हां, महाराज !" बात की अगली कड़ी सैनिक ने छीन ली थी, "वह तृणावर्त के सीने पर सवार था और तृणावर्त किसी शिला की तरह तेज गति से पृथ्वी की ओर आता हुआ—अगले ही क्षण—"

"ओह ! वह दृश्य रोंगटे खड़े कर देने वाला था महाराज !" अभिजीत जैसे बिलबिलाकर बोला था, "मृत्युपूर्व कैसा बीभत्स हो गया था असुर का मुख ! उसका अंग-प्रत्यंग टूट चुका था और बालक उसके हृदय पर खेलता हुआ। कुछ नहीं हुआ था उसे ! तिलमात्र चोट नहीं आई ! विलक्षणता तो यह थी कि मैंने जब असुर के शरीर से उस बालक को अलग करना चाहा तो उसे उठाना असंभव हो गया ! वह एक विशाल पर्वत

-सदृश भारी लगा ! मैं उसे हिला भी न सका !"

प्राप्ति ने देखा कि भोजराज कंस उत्तेजित होते जा रहे हैं। ऐसे जैसे अग्नि में घृत का आचमन किया जा रहा हो और अपने ही भीतर सब कुछ कह डालने को उत्सुक सैनिक बड़बडाता हुआ—"मैं ही नहीं, राजन् ! अन्य गोपों से भी नहीं हिल सका था बालक ! वह तो उस समय हटाया जा सका जब यशोदा ने उसे गोद में लिया।"

"यानी उस समय बालक हलका हो गया?" प्रद्युम्न चकित होकर पूछ बैठे।

सैनिक ने कहा, "हां, महाराज !"

सहसा कंस उत्तेजित होकर उठ पड़े थे, "बन्द करो यह अनर्गल प्रलाप !"

सैनिक ही नहीं सभी सहमकर चुप हो रहे। प्राप्ति को अच्छा नहीं लगा था। अनुभव हुआ जैसे कंस अपनी किसी भी चेष्टा, व्यवहार, संवाद, विचार आदि में सहज नहीं रह गए हैं।—

मथुराधिपति ने उग्र स्वर में कहा था, "इन मूर्खों को बाहर निकालो !" फिर जब लगभग धकियाते हुए वे बाहर ले जाये जाने लगे, तब अभिजीत ने सुनाया था तृणावर्त का मृत्युपूर्व संवाद।

"महाराज !" वह चीखने लगा था। सैनिक उसे बाहर की ओर लिए जा रहे थे। प्रद्युम्न का चेहरा पिटा हुआ। केशी तमतमाए हुए और कंस जबड़े कसते हुए। सैनिक बोला था, "मरने से पहले तृणावर्त ने आपको सूचना दी थी राजन् ! उस बालक के वध का या किसी भी तरह के अहित का प्रयत्न न करें !"

किन्तु कंस ने नहीं सुना। सैनिक बाहर कर दिए गए। उत्तेजित राजा ने सेनापति और महामंत्री को भी जाने के लिए संकेत कर दिया। बौखलाए हुए-से बैठे रहे। बड़बड़ाते हुए, "मूर्ख है सब ! उस गोप बालक को लेकर चमत्कार की तरह चर्चा करते हैं ! बकवास !" प्राप्ति का मन हुआ था कि बोले, उनको समझाने की चेष्टा करे—पर व्यर्थ था। अस्ति की उपस्थिति में कुछ भी कहना व्यर्थ था। कंस कभी न मानते। न मानने का एक और बड़ा कारण होता अस्ति का संवाद-सहयोग। प्राप्ति जानती थी कि

अस्ति भी उन्हीं की तरह बालक को लेकर ही नहीं, किसी को भी लेकर ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास नहीं कर सकती थी ! शक्तिदंभ ने सदा ही उसे नास्तिक बनाए रखा था।

केवल शक्तिपूजा ! शक्तिपूजा भी दंभ से पूर्ण !

यही थे मथुराधिपति कंस और यही है अस्ति ! और संभवत: यही हैं मगधराज जरासंध। अस्ति और प्राप्ति के पिता। प्राप्ति को सूचना मिली थी कि मथुरा पर गदाप्रहार की तैयारियां प्रारंभ हो चुकी हैं ! गदाप्रहार। असंख्य स्त्री-पुरुषों, बालकों का निर्मम संहार ! उग्र राजक्रोध का अन्धा परिणाम ! जिस क्षण सूचना मिली थी, उसी क्षण से मन उद्वेलित है। कितनी बार विचार आया है कि मगधराज को रोके। उन्हें समझाने की चेष्टा करे कि निरपराध मथुरावासी उनके जामाता वध के कारण नहीं—स्वयं उनके अपने जामाता महाराज कंस ही हैं ! पर जानती है प्राप्ति व्यर्थ होगी चेष्टा। उससे भी अधिक व्यर्थ होगा प्रयत्न ! मगधराज शक्तिदंभ में कंस की अपेक्षा कहीं अधिक मदोन्मत्त हैं ! उन्हें थामना असंभव !

मन मसोस लिया है प्राप्ति ने। ठीक उसी तरह जिस तरह पतिगृह में सैकड़ों ही बार मन के भीतर आई बात दबाने के लिए अपने-आप को रौंदा था।

भोजपति कंस किसी भी बार विश्वास नहीं कर सके थे कि बालक अद्भुत है। अद्भुत यानी अलौकिकताओं से पूर्ण ! यदि वह सब संयोग ही था तो निरन्तर संयोग कैसे हो सकता था ? निस्सन्देह यशोदासुत अलौकिक ही था।

पूतना और तृणावर्त ! यहीं कंस को बहुत कुछ समझ लेना चाहिए था, किन्तु वह किसी बार नहीं समझे ! उलटे रुष्ट होकर हर बार एक के बाद एक साधनों से बालक वध की चेष्टा करवाते गए थे। ज्योतिषियों ने बतलाया था, "देवकीसुत वही कन्हैया है !"

और देवकीसुत की हत्या मथुराधिपति का जीवन ! कैसी हास्यास्पद स्थिति थी यह ? मनुष्य काल को असंभव चेष्टा कर रहा था ! या यह कि इस चेष्टा के कारण ही काल उसके समीप आने लगा था !

प्राप्ति विगत से जुड़ी हुई सोचती चली जाती है। लगता है कि कृष्ण महाराज कंस के काल नहीं थे—कालप्रेरित बुद्धि के कारण कंस ने ही उन्हें कालरूप बना डाला ! अत्याचार और अनाचार की सभी सीमाएं तोड़ डाली थी उन्होंने। उन सबको नाम दिया था नीति और राजधर्म ! अगली बार पुन: विश्रांति समाचार ले आई थी प्राप्ति के पास। इस बार बकासुर को भेजा गया है कृष्ण-वध हेतु ! प्राप्ति बोली नहीं थी कुछ। केवल दुर्भाग्य और दुर्मति पर एक गहरा नि:श्वास लेकर चुप हो रही थी। दृष्टि शून्य में टिका दी। यह शून्य ही सत्य ! कितना अच्छा होता कि पति कंस इस शून्य के सत्य को समझ पाते !

□ ३

गोकुलवासी पूतना और तृणावर्त वध के बाद निश्चित रूप से समझ चुके थे कि नंदपुत्र की हत्या का प्रयत्न सुनियोजित ढंग से हो रहा है। एक के बाद एक षड्यंत्र ! वे सभी चिन्ताग्रस्त हो उठे थे। सुरक्षा के लिए तरह-तरह के उपाय सोचे-सुझाए गए, अन्त मे सभी एकमत होकर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि महाराज कंस से ही वार्ता की जाए। बरसाने वाले भी साथ थे। उनकी भी यही सम्मति।

नन्द गोप चुप बैठे सुनते रहे थे तर्क-वितर्क। अन्त में कहा था, "आप सभी कहते तो ठीक हैं, किन्तु यदि महाराज कंस ने यह उत्तर दिया कि कन्हैया सम्बन्धी सारी घटनाओं से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है—तब क्या कहा जाएगा ?"

तर्क मे दम था। सब चुप हो रहे। एक-दूसरे का मुंह ताकते हुए। सच ही तो। मथुराधिपति यह सब करवा रहे हैं; किन्तु करवा रहे हैं— इसका कोई प्रमाण उनके सामने न था। तब क्या किया जाए ? प्रश्न चर्चा जहां से प्रारम्भ हुई थी, वहीं फिर जा पहुंची।

गोप स्त्रियां सर्वाधिक घबराई हुईं। सबके मन में घृणा और आवेश

भी था राजा के प्रति। एक नन्हे से बालक को जिस तरह हत करने का कुप्रयास कंस कर रहे थे, वह अपने आप में बहुत घृणित और ओछा काम था। वृषभानु बोले थे, "महाराज कंस की इस कुचेष्टा को लेकर समूचे जनपद में आक्रोश है! अक्रूर, श्वफल्क, शिनि, देवक किसी को भी यह सब अच्छा नहीं लगा है!"

एक गोप ने उत्तेजित स्वर में कहा था, "किन्तु किया क्या इन सबने? यही ना कि सब चोरभाव से बैठे हुए हैं। एक-दूसरे के आंचल में काले मुंह छिपाए हुए! धिक्कार है इन यदुवंशियों पर! एक अनाचारी राजा का वध भी नहीं कर सकते!"

दूसरे ने कहा, "वध करना एक ओर, ये लोग तो विरोध में स्वर भी नहीं निकाल रहे हैं! लगता है सब पुंसत्वहीन हो गए!"

घोर घृणा थी सामान्य जन में। इससे अधिक घृणा भोजवंशी, अन्धक और वृष्णि सामन्तों से थी। महाराज उग्रसेन को बन्दी बनाकर जिस भाव से कंस ने जरासन्ध की आधीनता स्वीकारी, उसी ने प्रजा को रुष्ट कर दिया था। तिस पर वसुदेव-देवकी को कारावास दिया जाना, उनके सद्य.जात बालकों की हत्या— और फिर यशोदासुत को देवकीसुत समझ-कर किए जा रहे हत्याप्रयास! छिः! एक विचित्र-सी विकृतिपूर्ण मनः-स्थिति बनने लगी थी नागरिकों की।

वे कई प्रहर चर्चा करते रहे। और केवल वहीं क्यों, मथुरा में भी गुपचुप चर्चा बिखरने लगी थी! यह चर्चा स्वयं प्राप्ति ने भी सुनी थी। दुःख और चिढ़ से कहीं ज्यादा वह आशंकित अनिष्ट के प्रति घबराहट से भर गई थी।

संयोग ही था कि प्राप्ति उस दिशा से निकल पड़ी; जिधर से विकाएं एकत्र रहा करती थीं! कदम आगे बढ़ता, इसके पूर्व ही ठिठककर रह गया था—महाराज कंस का नाम सुना था उसने! स्वर जाना-पहचाना। अन्तःपुर की ही एक सेविका थी वह। प्राप्ति ने न चाहते हुए भी रुककर सुनना आवश्यक समझा था।

वह कह रही थी, "महाराज कायर हैं! समग्र नगर में चर्चा है कि गोकुल के एक गोप बालक से आशंकित हो गए हैं। समझते हैं कि वह

उनका काल है ! यह भी शंका हो गई है उन्हें कि वह देवकी और वसुदेव की संतान है ! यही कारण है कि विभिन्न षड्यंत्र करके उस अबोध शिशु का वध करवाना चाहते हैं !"

"छि: !" धिक्कृत भाव से किसी अन्य सेविका ने कहा था, "एक शिशु के वध का षड्यंत्र महाशक्ति सम्पन्न राजा करे, धिक्कार है !

"आश्चर्य की बात तो यह है कि वह बालक है भी अद्भुत !" एक और सेविका ने कहा था। वे झुंड में थीं। सभी के स्वर में कंस के प्रति घृणा का भाव। सभी का आरोह-अवरोह तिरस्कार में डूबा हुआ।

सहमकर लौट पड़ी थी प्राप्ति। समझ लिया था कि महाराज कंस के प्रति साधारण जन में लोकप्रियता के स्थान पर घृणा जनमने लगी है। यदि चुप्पियां बिखरी दीखती हैं तो केवल सत्ता और शक्ति के भय से।

क्या यह अनुभव सुनाना चाहिए भोजपति को ? हो सकता है कि यह सब सुन-जानकर ही वह चैतन्य हों ? आगतभय को समझ सकें ! यही सोचकर महाराज से भेंट की थी मगधसुता ने। निवेदन किया था, "राजन् ! जानती हूं कि आप सदा ही अशुभ समाचारों से घिरे रहे हैं। अपार शक्ति, स्वास्थ्य, सम्पन्नता और सत्ता होते हुए भी किसी बार आप उस सबके आनन्दोपभोग का समय नहीं पा सके हैं ! सदा ही राजनीति ने व्यस्त रखा है आपको।"

कंस जितने उद्दंड थे, उससे कहीं अधिक उद्दंड बना डाला था उनकी अपनी जुटाई परिस्थितियों ने। टोक दिया था रानी को। पूछा, "जो कहना चाहती हो देवी, वही कहो। इतनी लम्बी भूमिका की आवश्यकता नहीं है।"

प्राप्ति ने भी निश्चय किया कि जिस तरह साफ-सपाट पूछा जा रहा है, उसी तरह सपाट ढंग से बता डालेगी ! यही किया भी। किन्तु काल-बुद्धि कंस सदा की तरह उत्तेजित होकर मानसिक सन्तुलन खो बैठे। चीखे थे, "कौन हैं वे दुष्टाएं जो ऐसा राजद्रोह कर रही हैं ?"

"किन्तु देव..." प्राप्ति ने घबराकर उन्हें सहेजना चाहा था। कंस ने बाहुओं से रानी को झकझोर डाला था, "कौन ? मुझे बतलाओ ! ऐसे शब्द सुनना राजा के लिए मर्यादाहीनता सहना है ! उनके नाम दो

मुझे ?"

बाध्य होकर, प्राप्ति ने सेविकाओं के नाम सुना दिए थे। कंस चले गए ! प्राप्ति बिलखने लगी थी ! समझ लिया था कि यह सब विधिरचित है ! शुभ को अशुभ में बदलने की कालबुद्धि ! महाराज कंस कर्मों में ही नहीं विचारों में भी दूषित हो चुके हैं !

यही हुआ था ! प्राप्ति को जो आशंका थी, वही। सन्ध्या समय ही समाचार मिला था उन्हें। महाराज कंस ने उन सभी सेविकाओं को केवल सेवा से ही अलग नहीं किया, कारागृह भेज दिया था ! नितान्त दुर्बुद्धि !

□□

उसी दिन प्राप्ति ने निर्णय किया था कि अब कभी पति को शुभोन्मुख करने का दुस्साहस नहीं करेगी ! ऐसा करने का अर्थ होगा, उन्हें अधिक कुपथगामी बनाना !

वह केवल दर्शक रहेगी ! घटनाओं की श्रोता ! मथुरा में जो कुछ घटता, उसे उसी श्रोताभाव से सुनती थी प्राप्ति। अप्रभावित रहने का अभिनय करती। किन्तु लगता था कि हो नहीं पाता है। इसके विपरीत होता यह था कि मन के भीतर ही शब्द उमड़ते—फिर उन्हें पचाती। निश्चय ही काल प्रेरित होकर मथुराधिपति कंस वह सब किए जा रहे थे, जो अशोभनीय ही नहीं – घृणित था !

एक और अशोभनीय घटना थी वह जो विश्रांति ने सुनाई। बकासुर को गोकुल भेजा गया है ! प्राप्ति ने जबड़े कस लिए थे। बकासुर ! एक और मायावी राक्षस ! धन, पद के मोह में वह क्या कुछ करेगा वहां जाकर ? बाद में सब ज्ञात हुआ ! जो ज्ञात हुआ, उसने भी सिहरनों से भर दिया प्राप्ति को ! ज्ञात हुआ था कि बालक ने बकासुर को भी मार डाला है ! एक और अलौकिक, अतिमानवीय कृत्य ! एक और चेतावनी !

पर प्राप्ति इन चेतावनियों से अधिक जन-असंतोष से भयभीत थी ! यह जन-असंतोष ही उसके पति के लिए घातक सिद्ध होगा ! एक दिन आयेगा जब वह साधारण गोप-बालक समग्र जनपद की सहानुभूति अर्जित

करके स्वाभाविक रूप से लोकप्रिय हो जाएगा ! महाराज कंस अरुचि के पात्र हो चुके होंगे !

किन्तु प्राप्ति के वश में सोचने और मन-ही-मन सुलगते रहने के अतिरिक्त था भी क्या ? यही हुआ। कंस निरन्तर एक के बाद एक ऐसी घटनाओं का संयोजन करते गए थे जो उन्हें अलोकप्रिय बनाती जाएं और प्राप्ति चुपचाप वह सब देखती रही थी। मूक होना उसकी बेबसी थी। सन्नाटों को सहते रहना कुल का अनुशासन और छटपटाहट को झेलते रहना नियति !

□□

बकासुर और वत्सासुर साथ-साथ गए थे। बहुत सतर्क और सावधान भी थे। बालक श्री कृष्ण उनसे पूर्व दो आसुरी शक्तियों का वध कर चुका है ! सहज ही था कि दोनों अधिक चालता और चंचलता से काम लें !

दोनों ने परस्पर निश्चय किया था कि एक-एक कर बालक को हत करने जाएंगे। जाते समय छल से काम लेंगे ! सदा की तरह राजकीय गुप्तचर उनके पीछे भी थे। जिस समय उनके गोकुल-प्रस्थान का समाचार मिला था, उसी समय प्राप्ति के भीतर से अजाना स्वर निकलकर आंतों में ही गुम गया था ! ठीक किसी गूंज की तरह ! लगा था कि आगत आशकाएं प्राप्ति के अन्तर से निकलने लगी हैं !

स्वयं प्राप्ति ने सुना था स्वर, "वह भी मारे जाएंगे !" अब तक स्मरण है उसे। हां, यही उमड़ा था उसके भीतर। और फिर यही हुआ ! इसके बाद तो जैसे प्राप्ति के भीतर का यह स्वर भविष्यवाणी की तरह हर बार उबलने लगा था ! उस समय भी उबल आया था, जब अक्रूर के माध्यम से महाराज कंस ने बलराम और श्री कृष्ण को गोकुल बुलवाया था !

पर वह बहुत बाद की बात है... [illegible] बकासुर और वत्सासुर को लेकर ही स्मरण आ रहा है। [illegible] उनके निधन [illegible] भी मथुरा के सैनिक आए थे। [illegible] कुछ [illegible]

ने सब सुना डाला था। असहज ढंग से घटी सहज घटना।

□□

गोकुल वासियों ने आए दिन नंदसुत को लेकर घटने वाली आक्रामक घटनाओं से व्यथित होकर स्थान-परिवर्तन कर लिया था।[1] समूची गोप-बस्ती के इस निर्णय को लेकर नंद बोले थे, "इस सबसे होगा क्या ? यदि मथुराधिपति कान्हा का वध ही कराना चाहते हैं, तब क्या वह वृन्दावन में नहीं करवा सकेंगे ?"

पर गोकुल के स्त्री-पुरुषों ने जिद पकड़ ली। कहा, "वृन्दावन में घने वृक्ष और कुंज हैं, वहां छिपने बचने के भी अतिरिक्त साधन हैं। गौओं के लिए चारे की भी कमी नहीं है। हर दृष्टि से वृन्दावन अधिक उपयुक्त है।"

गोकुल-वृन्दावन में विशेष फासला नहीं था, किन्तु बहुमत के सामने नंद ने स्वीकार लिया। बोले, "हरिइच्छा ! तुम लोग यही उचित समझते हो तो मुझे उज्र नहीं !"

वे चल पड़े · स्त्री, पुरुष, वृद्ध, वृद्धाएं और बालक। बड़ी मात्रा में पशुओं को साथ लिया, गाड़ियां सजाईं, सामान रखा और चल पड़े। रोहिणी अपने पुत्र सहित यशोदा के साथ ही रहती थीं। कर सकर्षण का पालन-पोषण भी यशोदा ने ही किया था। यशोदा के पोष्यपुत्र कहलाते थे कर-सकर्षण ! वलिष्ठ थे वह, सरल स्वभाव। श्रीकृष्ण से केवल एक वर्ष अधिक थे आयु में। किन्तु बालक कृष्ण उनसे सहमते थे। उनकी गंभीरता और क्रोध का सम्मान करते। उस समय तक सात वर्ष के हो चुके थे वह। ग्वालों के साथ खेलते। कभी-कभी युवा गोपों के साथ वन में भी चले जाया करते। ग्वाल बालों से आयु में छोटे होते हुए भी अपनी चपलता, मृदुता,

१. श्रीमद्भागवत के (दशम स्कंध) में वर्णन आया है कि वत्सासुर और बकासुर के आने के पूर्व गोकुलवासियों ने गाड़ियों में सामान रखकर वृन्दावन जाने का विचार किया था और गए। वत्सासुर और बकासुर का वध श्री कृष्ण ने वृन्दावन क्षेत्र में गोवर्धन पर्वत के पास ही किया था।

बुद्धि और चमत्कारपूर्ण शक्ति से उन सभी को अनुगामी बना रखा था। उनकी हठ स्नेह से भरी होती, ठिठोली मन को आनंद देने वाली, बोलते तो लगता कि स्वर मे मिश्री घुली हुई है। देखते तो चपल पुतलियां क्षण-क्षण मोहती। दृष्टि पहली बार में ही किसी को भी बांध लेने वाली! विचित्र-सा मोहमय आकर्षण था बालकृष्ण मे! स्फूर्ति विद्युत् की तरह थी। चंचलता लहरो के अनवरत क्रम की तरह बाल-व्यक्तित्व मे गुंथी हुई थी। सौंदर्य तेजपूर्ण था और व्यक्तित्व का एक बड़ा हिस्सा असामान्यता का बोध कराता हुआ!

जो देखता, मन करता था कि बांहों मे भरकर चूम ले। स्पर्श तक आह्लादपूर्ण अनुभव देता। यशोदा पल-पल चिंतित और अधिक चिंतित होती जाती थी। लगता था कि बालक का यह मोहमय रूप ही उसका शत्रु हुआ जाता है! तनिक देर को दृष्टि से ओझल होते कृष्ण तो अकुलायी हुई जहां-तहां खोजने लगती, "किसी ने देखा कान्हा को? कहां है वह?"

सब जानते थे कि यशोदा के प्राण कान्हा मे बसे है। और सब जानते थे कि उनका अपना भी बहुत कुछ कान्हा मे ही है। या यह कि कान्हा है इसलिए वे सब है। उनका सुख, आनंद, उल्लास और अपना आप है! कान्हा से विलग केवल यशोदा ही नही रह सकती, गोकुल के ग्वाल-बाल, पशु-पक्षी तक जुड़े हुए है! उनसे बिछुड़न की कल्पना जीवनहीन हो जाने की कल्पना जैसा है! इस मोह-नेह ने वह निर्णय करवा दिया था। गोकुल से वृन्दावन!

क्या अन्तर पड़ना था? निहत्थे, निर्मल, सरल गोपों के लिए कंस के दुष्टतापूर्ण षड्यंत्रों से कान्हा को बचा पाना असभव था। सब जानते थे। मन-ही-मन बुझे भी रहते, फिर मन-ही-मन निश्चिन्त भी रहते! कान्हा मे स्वयं ही अपनी रक्षा करने की शक्ति है!

फिर कन्हैया सौभाग्य बनकर भी आया गोकुल में। सबने गत चार बरसो मे अनुभव किया था कि जब से कन्हैया उन्हें मिला है, तब से पशु-धन दोगुना हो गया है। प्रकृति भी अधिक ममतामयी होकर ब्रजवासियों को समृद्ध कर रही है। सुख और आनंद भी द्विगुणित हो उठे हैं। निश्चय ही कान्हा मे कोई अदृश्य शक्ति थी। अथवा कान्हा ही कोई शक्ति है!

वत्सासुर और वकासुर भी जानते थे कि जिसे समाप्त करने जा रहे हैं — वह विशिष्ट शक्ति से पूर्ण हैं ! अथवा स्वयं ही शक्ति है ! सतर्क थे ! इस सतर्कता के लिए छद्मजाल भी बहुत बड़ा बुना था उन्होंने !

गोकुलवासी वृन्दावन क्षेत्र में पहुंचकर बस चुके थे। नियमित ग्राम जीवन और कर्म-धर्म प्रारम्भ हो गया था।

वत्सासुर और बकासुर ने अंधेरी रात्रि मे गोप-बस्ती को देखा-भाला। सभी दिशाएं, अपने बचाव की स्थितियों और वातावरण को जांचा-परखा। फिर रात गहन अंधकार के बीच वन क्षेत्र मे काटी।

दूर, एक ओर गोवर्धन पर्वत था। एक ओर यमुना तट। प्रकृति जैसे पृथ्वी के आंचल में हरीतिमा को भरे हुए। गोपों ने जहां-तहां अपने-अपने निवास बना लिए थे। सबके पशु, सबके आंगनों मे एक ओर बंधे हुए !

दूध, दधि और माखन उनका जीवन था। पशुसेवा से प्राप्त इस धन से उनकी आजीविका चलती थी। अनेक गोप गाड़ियो मे प्रतिदिन बड़ी मात्रा मे दूध, दही और माखन मथुरा पहुंचाया करते। वहा समग्र रूप में आढतिए उनकी खरीद करते, जीवन की आवश्यक वस्तुएं उन्हें प्रदान करते। उसी से ग्रामवासियो का भरण-पोषण होता। गोप-स्त्रियां दिन-रात श्रम करके दही और मक्खन बनातीं—गोप पुरुष पशुओं की सेवा शुश्रूषा मे जुटे रहते। बहुत शांत जीवन था उनका। किन्तु कान्हा के जन्मते ही यह जीवन राजनीतिक उथल-पुथल से भर उठा। पर यह उथल-पुथल उन शांतिप्रिय लोगों को अनायास ही अधिक साहसी और धैर्यवान बनाती चली गई।

वे सभी सतर्क रहने लगे। स्त्रियां हों या पुरुष, बालक हो या वृद्ध सभी के मन मे कन्हैया के प्रति जितना नेह था, वही सहसा उनकी शक्ति बन गई ! षड्यंत्रो से घिरकर भी वे शांत थे। सहज और सरल थे। पर निश्चय शक्ति दृढ़ हो गई थी !

यही निश्चय शक्ति थी, जिसने व्रजक्षेत्र मे नयी बस्ती बसाते हुए भी कठिनाई अनुभव नहीं की। गोकुल की ही तरह इस नयी बस्ती मे भी उल्लास, उत्साह और उमंगों का आकाश बिछ गया ! और तभी इस आकाश पर नया धूमकेतु उदय हुआ ! कंस के षड्यंत्र का धूमकेतु !

वत्सासुर और बकासुर का वृन्दावन पहुंचना !

□□

वृन्दावन की हरीतिमा ने यदि गोपों को सुरक्षा दी थी, तो उतनी ही षड्यंत्रकारियों को सुविधा भी दे दी थी। अनेक वन-निकुंजों में आसानी से छिपा जा सकता था। वत्सासुर और बकासुर ने भी यही किया। वत्सासुर वज्रदेह था। मायावी भी। योजना बनी कि जब बालक कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ खेल रहे होंगे, तब वह आसपास ही पशुझुंड में समाकर छलपूर्वक बालक पर आक्रमण करेगा ! घातक सींग उसके सहायक बनेंगे। सब समझेंगे कि नंदसुत को किसी वत्स बैल ने हत किया है। यों भी पशुओं के झुंड में सहसा उसे देखा जाना संभव न था। उसी झुंड का लाभ उठाकर उसे भाग भी निकलना था !

बकासुर ने पूछा, "वह सब तो ठीक है, किन्तु यशोदापुत्र है कौन-सा ? यह तो जान-समझ लेना आवश्यक है ! ऐसा न हो कि हम कृष्ण के बदले किसी अन्य गोपपुत्र की हत्या कर डालें !"

वत्सासुर भी सहमत हुआ। निश्चय किया गया कि भोर हुए ही नंद गृह पर पहुंचकर पहले बालक को पहचान लेंगे। गोप बस्ती के पुरुष गौओं को चराने भोर हुए ही निकल जाया करते थे। ग्राम में शेष रह जाती थीं स्त्रियां, बालक और वृद्धायु पुरुष ! कठिनाई नहीं थी !

सूर्योदय पूर्व ही गोप पशुओं को वन क्षेत्र की ओर ले गए। वत्सासुर और बकासुर साधारण नगरवासी के वेश में जा पहुंचे नंद-गृह। दोनों ने ही साधुओं के वस्त्र पहन रखे थे। मुद्रा, स्वर, दृष्टि सभी क्रियाओं में आश्चर्यजनक परिवर्तन कर लिया था। छली, अक्सर अच्छे अभिनेता भी होते हैं। वत्सासुर ने इसी अभिनय से काम लिया। नंद-गृह के मुख्यद्वार पर पहुंचकर दाएं-बाएं झांका और जब निश्चिन्त हुए कि कोई नहीं है, तब भीतर दृष्टि डाली।

आंगन में पीली कछौटी पहने हुए एक चपल बालक खेल रहा था। सांवला रंग, मोहिनी सूरत। क्या यह कृष्ण है ? दोनों ने एक-दूसरे को देखा। पर उत्तर में भीतर से स्त्री-स्वर में पुकार उठी, "कन्हैया

कन्हैया ? कहाँ गया रे तू ?" और बालक 'आया मैया !' कहता हुआ भीतर की ओर लपका। जाते समय बालक ने बड़ी मोहक मुस्कान के साथ दोनों को देख लिया था।

कन्हैया !

वे एक-दूसरे को देखने के बाद वापस हो गए थे। चकित थे। इस छोटे-से बालक के वध हेतु उन्हें भेजा गया है ? किन्तु तुरन्त ही मन में सकपकाहट बिखर गई थी। स्मरण आया था कि इसी के हाथों पूतना और तृणावर्त मारे जा चुके हैं ! विचार ने पल-भर के लिए उन्हें सिहरा भी दिया ! अवश्य ही कुछ विशिष्ट होगा उस बालक में। वह दृष्टि ?

लगा था कि अब भी आंखों के सामने है। चपल दृष्टि ! किन्तु विद्युत् की तरह कौंधती हुई ! केवल उस पल की प्रतीक्षा थी, जब बालक ग्वालों के साथ मिले। पास ही कहीं पशुओं का झुरमुट हो।

□□

प्रतिदिन की तरह वे सब खेलने निकले ! उद्धव को पल-भर पूर्व उनके घर से बुला लाए थे श्री कृष्ण। फिर दोनों ने मिलकर अन्य गोपों को एकत्र किया था। थोड़ी देर बाद वे सब यमुना तट की ओर जा पहुंचे !

बहुत टोकती थी यशोदा, किन्तु बालक ठहरे ! नंद कहा करते थे—उसे बांधकर तो नहीं रखा जा सकता ! सहज है कि बच्चों में खेलेगा ! फिर भी डरी रहती।

कुछ समय पूर्व जब कृष्ण ने माता से अनुमति मांगी थी, तब साफ नट गई थी वह। "नहीं, तू कहीं नहीं जाएगा ! यहीं खेल !"

"यहां कहां खेलूं मैया ?" मीठी, उलाहने भरी आवाज में कान्हा ने कहा था, "देख तो कितनी थोड़ी-सी जगह है ?" फिर आंगन में एक कोने से दूसरे कोने तक दौड़कर पल-भर में जतला दिया था—आंगन छोटा है !

यशोदा अपनी ओर से कठोर रहना चाहती थी। अनेक बार की तरह इस बार भी निश्चय किए हुए थी कि कन्हैया बस्ती या तट-क्षेत्र में खेलने जाने की जिद पकड़ेगा तो डपट देगी उसे ! किन्तु हर बार की तरह इस

बार भी न जाने कैसी मोहिनी में बांध लिया था उसने। यशोदा अस्वी-
कार नहीं सकी। लगा कि निश्चय बर्फ की तरह पिघल गया है! नेहपूर्वक
सोचा—दुष्ट कहता ही इस सम्मोहन-ध्वनि में है कि होंठों पर अस्वीकार
का शब्द होते हुए भी स्वीकार ही निकलता है! अनेक बार तो शब्द ही
नहीं फूटते थे उनके मुंह से। टकटकी बांधे उसे देखती रह जाया करती।
ऐसे जैसे चमत्कार को देख रहीं हैं. नेह, श्रद्धा और पवित्रता का अजब-सा
भाव होता मन मे!

कान्हा कह रहा था, "चला जाऊं मैया?" यहीं, पास ही तट पर
खेलूंगा। और बालक भी तो जा रहे हैं। मुझसे भी बड़े-बड़े।" सहसा वह
यशोदा के गले से झूल गया था, "जाऊं ना?"

अनजान ही वह बैठी थी "जा! पर शीघ्र आना!"

"हां, मैया!" शब्द पूरे होते न-होते तो कृष्ण बाहर पहुंच गए थे।
और उसी गति से गोप बालकों का एक पूरा दल यमुना तट पर!

यशोदा ने रोहिणीसुत को बुलाया, फिर कहा था, "तू भी जा! देखना
कहीं कान्हा कुछ उपद्रव न करे!"

बलराम भी तट-क्षेत्र की ओर लपक लिए।

□□

दोनो असुर राह जोह रहे थे। प्रसन्न हुए। यह संयोग ही था कि
जिस तरह, जो सुविधा चाहते थे—वही मिल गई है! गोप बालकों से
घिरा कान्हा सबसे छोटा था, किन्तु पल-भर में समझ लिया था दोनों ने कि
वही प्रभावी है। उसी के निर्देशों पर खेल रहा था। प्रकट था कि सबसे
तीव्र बुद्धि भी होगा, दबंग भी।

एक ओर बछड़ों का एक झुंड था। वत्सासुर ने कहा था, "मैं इसी
झुंड मे मिलकर कान्हा तक पहुंचूंगा।"

बकासुर ने उत्तर नहीं दिया। वह कान्हा को दृष्टि लगाए देख रहा
था। लम्बोदरा मुंह था उसका। ठीक किसी बक पक्षी की तरह। इसीलिए
नाम पड़ा था बकासुर। तट-क्षेत्र के इस एकांत में छुपे हुए दोनों ही अपने
को निरापद समझ रहे थे।

निश्चित योजनानुसार वत्सासुर धीमे-धीमे सरका और पशुओं के झुंड मे जा समाया। अगले ही क्षण झुंड मे समाए हुए ही उसने पशुओं को उस दिशा मे हकालना प्रारंभ किया, जिस दिशा मे बालक खेल रहे थे।

मथुरा से पीछे लगे राज-गुप्तचर दूर से सारा दृश्य अरुचि के साथ देखते रहे। लगता था कि विशालकाय असुर बचकाना हरकतें कर रहे हैं। भला उस छोटे से शिशु को लेकर इतनी योजना बनाना क्या आवश्यक है! सीधे जायें और पल-भर मे गला भीच डालें! फिर ध्यान आया पूतना और तृणावर्त का! उसके साथ-साथ जन-प्रचलित कहानी भी। देखने में साधारण लगने वाला वह शिशु असामान्य और अलौकिक शक्तियो वाला है! उसे छल-जाल मे फंसाकर ही मारा जा सकेगा! उसके मरने मे ही महाराज कंस का जीवन निहित है!

पशुओ का वह छोटा-सा रेला धीमे-धीमे खिसकता हुआ क्षेतटत्न की ओर बढा। वह बालको के पास जा पहुंचा। अगले ही क्षण उसने बालकों को अपने बीच ले लिया। सब चीखते-चिल्लाते, हांफते हुए एक-दूसरे से पास होकर भी अलग हो गए। अवरोधो की तरह अनेक पशु उनके बीच आ पहुंचे थे। वत्सासुर तीव्रगति से बालक कान्हा की ओर बढ़ा, अगले ही क्षण वह उसके एकदम पास था!

नन्हें कान्हा ने विद्युत् कौंध की तरह उसे देखा, फिर वत्सासुर उसके समीप पहुचकर आक्रमण का अवसर पाए, इसके पूर्व ही असामान्य गति से छिटका। पलक मारते ही वत्सासुर के पिछली ओर जा पहुंचा। वत्सासुर संभले, मुड़े या पशुओं के जत्थे में अपने मुड़ने की जगह बना सके, इसके पहले ही कान्हा के छोटे-छोटे हाथो ने उसके पैर थाम लिए। फिर वह चक्रवात की तरह हवा में घूमने लगा, जोरो से—इस तरह कि शरीराकार भी वायुमंडल में घूलने लगे। एक आकुल स्वर उसके होठों से बाहर निकल रहा था। वह भी खंडित! बालक के हाथ इस तेजी से घूम रहे थे कि स्वर, शरीर, आकार, सभी कुछ अस्त-व्यस्त हो उठे। अगले ही क्षण वह धरती पर आ गिरा! बालकों से दूर वह ऐसी जगह गिरा था, जहां ठोस धरती थी।

चकित गोप बालकों ने ही नहीं सैनिकों ने भी देखा ! कान्हा पूर्ववत् सहज और शांतभाव से पशुओं के झुंड में खड़ा था और वत्सासुर के वदन में कोई हरकत नहीं थी !

देर बाद सोच सके थे वे। संभवतः असुर मारा गया ! सहमते हुए गोप बालक आगे बढ़े और धरती पर पड़े वत्सासुर को देखा ! वदन कई जगह से फट गया था उसका। आंखें उबलकर बाहर निकल आई थीं। लगता था कि इस समय भी मृत्युभय का वही चकित भाव उसके चेहरे पर है, जो पैर पकड़कर घुमाते हुए उभरा था।

सैनिकों ने माथे का पसीना पोंछा। विश्वास करने को जी नहीं कर रहा था, किन्तु सत्य सामने था ! वीभत्स और डरावना सत्य !

बलदाऊ झुके हुए थे वत्सासुर के मृत शरीर पर ! बड़बड़ाए थे—"मर गया !"

अविश्वास, आश्चर्य और भय से उन्होंने एक-दूसरे को देखा। बोले नहीं। बोल कहीं गायब हो चुके थे। आतंक ने वदन कंपकपी से भर दिया था उनका। बालक की ओर देख रहे थे, फिर दृष्टि मोड़ते—निर्जीव वत्सासुर की ओर ! एक सहसा मुड़कर भागने को हुआ, किन्तु दूसरे ने थरति कमजोर हाथ से ही सही, पर बांह थाम ली। डरकर वह जैसे-तैसे बोल सका था, "क्या हुआ ?"

"वह देख !" उतनी ही थरथराती आवाज में दूसरे सैनिक ने उत्तर दिया था,— जिस ओर दृष्टि मोड़ी— उस ओर देखने पर चिन्तापूर्ण जिज्ञासा ने अवाक् कर दिया। इस बार बकमुख बकासुर तटक्षेत्र की ओर बढ़ रहा था। लगता था कि विशालकाय पक्षी है। किन्तु था मनुष्य ? दीर्घदेह असुर !

"इस बार अवश्य ही यह दुर्जेय बालक मारा जाएगा !" सैनिक ने बड़बड़ाकर अपने साथी से कहा था।

"हां ! संभवतः तुम सच ही कहते हो !" दूसरा बोला— पर लगा कि बोल गले में ही कहीं उलझे रह गए हैं ! आश्चर्य और विमूढ़ता ने मन के भीतर एक जंगल जनम दिया है। ऐसा जंगल, जिसमें शब्द अटक जाते हैं। दोनों उसी ओर देखने लगे।

बहुत खूंखार हो उठा था वह असुर ! और उससे कहीं अधिक सहज-सामान्य दीख रहा था कान्हा ! एक बार पुन: अविश्वास की स्थिति बन गई थी। ऐसा छोटा-सा बालक भला कैसे किसी का वध कर सकता है। यह आयु तो पंछियों को मारने की भी नहीं, पर उन्हीं आंखों में उन सबने वत्सासुर का वध देखा था ! एक आश्चर्यजनक किन्तु दुरूह और अविश्वसनीय सत्य !

गोप बालकों की टुकड़ी के साथ कान्हा वापस हो चुका था बस्ती की ओर ! बकासुर उसे जाते हुए घूर रहा था। लगता था कि उत्तेजना और क्रोध के कारण रह-रहकर कुछ असंयत-सा हो उठता है, किन्तु संयत रहना उसकी बेबसी बन चुकी थी। सैनिकों ने सोचा। संभवत: यह दूसरा दुर्दम्य असुर भी समझ चुका है कि उस बालक के सामने सीधे-सीधे पड़ना उचित नहीं होगा। दर्शक भाव से उस सबको देखते रह गए थे वे लोग। गोप बालक बस्ती की दिशा में जाकर अलोप हो चुके थे।

सैनिकों ने समझ लिया था कि यह दिन बीत चुका है। एक ने कहा था, "तुम मथुरा पहुंचकर महाराज और सेनापति को वत्सासुर-वध की सूचना पहुंचा दो ! मैं यहां रुककर यह दूसरा असुर क्या करता है—देखूंगा।"

"किन्तु—" सैनिक सकपकाया। वह अधिक भयग्रस्त था। व्याकुल दृष्टि से साथी को देखकर कहा था उसने, "इतना सारा मार्ग मैं अकेले पार करूंगा !"

"क्यों ?—इसमें क्या है ?"

"है तो कुछ नहीं, किन्तु—फिर तुम्हारा भी तो यहां अकेले रहना उचित नहीं है ?" सैनिक ने अपना भय पहले के मस्तिष्क में उतरा।

दूसरा सैनिक कहना चाहता था कि वह अकेले रह सकता है किन्तु जो कुछ देखा था, उसने उसे भी कम नहीं डराया था—बोला, "हां, संभवत: तुम उचित ही कहते हो ! ठीक है, हम इस दूसरे असुर का कारनामा भी देखकर चलेंगे ! वैसे मुझे नहीं लगता कि उस बालक का वध संभव है। फिर भी—"

"यह अधिक छली है, भाई !" सैनिक ने कहा था। संदेहकर्ता सैनिक

चुप हो गया।

□□

निःसंदेह दूसरा अधिक छली था! वत्सासुर की अपेक्षा अधिक लम्बा-चौड़ा भी था वह। देह सौष्ठव भले ही वैसा न रहा हो, किन्तु असहज लम्बाई ने उसे विचित्र बना दिया था। जिस तरह जल में समा जाता था, उससे यह समझना भी कठिन नहीं था कि वह तैराक भी बढ़िया है।

गुप्तचर सैनिक उत्सुकता से बकासुर के प्रयत्न की प्रतीक्षा करते रहे थे। क्या करता है वह? लगता था कि कान्हा को वह जल-जीव का छल देकर हत करेगा!

गोपों की छोटी-सी बस्ती ने उस सारी रात वत्सासुर-वध पर उत्साह मनाया था। सभी ने एकमत स्वीकार किया था कि कान्हा अतुलनीय और अस्वाभाविक शक्तियों से सम्पन्न है! मथराधिपति के प्रति एक होकर सभी ने घोर वितृष्णा प्रकट की थी। उससे कहीं अधिक वह अपने प्रति विश्वस्त हुए थे। चिन्ताग्रस्त थे केवल नंद और यशोदा। जिस तरह एक के बाद एक षड्यंत्र करके महाराज कंस नन्हे कन्हैया का वध करना चाहते थे—उन घटनाओं को लेकर, वे उस तरह विश्वास नहीं कर पा रहे थे, जिस तरह सामान्य गोपों का था। वे सोचते थे कि कन्हैया ईश्वरीय शक्तियों से पूर्ण है।

किन्तु नंद और यशोदा के लिए वह प्राणप्रिय संतान! उसे लेकर जब सोचते तब स्मरण रहता था कि बालक को किसी-न-किसी सुरक्षित स्थान पर भेज देना उचित होगा। सारी रात्रि यही कुछ विचार-विमर्श चलता रहा था। और कन्हैया सदा की तरह अपने अद्भुत कर्मों से अनजान बना हुआ बाल-क्रीडाओं में रत। कभी इस गोप स्त्री का नेह जुड़ाता, कभी किसी गोप-बालिका के साथ खेलने लगता।

सैनिक इस छोटी-सी सभा और उल्लास-समारोह के चकित दर्शक रहे। अगले दिन कान्हा की हत्या का एक और षड्यंत्र आयोजित है—जानते थे!

जब मथुरा से दोनों असुरों का पीछा करते हुए चले थे, तब लगा था कि संयोगमात्र के कारण उस बालक को लेकर असाधारण किंवदंतियां प्रसिद्ध हो गई हैं, किन्तु अब लग रहा था कि अनुमान से अधिक असाधारण स्थिति को देख-भोग रहे हैं।

कभी मन करता था कि असुर सफल होगा— इस विचार पर विश्वास कर लें, कभी मन होता कि व्यर्थ है। जो देख चुके हैं, उसके बाद सुर-असुर किसी के कर्तृत्व पर विश्वास करने का मन नहीं होता।

रात बीत गई। अगले दिन सूर्योदय के साथ ही गोप पुरुष नित्य क्रमानुसार पशुओं को चराने अपने-अपने घरों से निकल पड़े। तनिक दिन चढ़ते ही गोप बालकों की टोली पुनः सक्रिय हुई। इस बार वे सब खेलते-कूदते एक जलाशय की ओर बढ़ चले थे। सैनिकों ने देखा था कि बकासुर भी लुकता-छिपता उसी दिशा में चल पड़ा है।

झाड़ियों की ओट में छिपे वे प्रतिक्षण उत्सुक भाव से उस ओर देखे जा रहे थे, जिस ओर बालक गोपों की टोली आ रुकी थी। नन्हे कन्हैया ने वहीं रुककर आदेशपूर्ण स्वर में कहा था, "बस ! यही स्थान उपयुक्त है।"

सैनिकों को लगा कि विधाता सचमुच ही विनाश-काल में मतिभ्रष्ट कर देता है। बालक ने जानबूझकर वह स्थान चुन लिया था, जिस स्थान पर जलाशय में बकासुर समा चुका था।[1]

---

१. श्री मद्भागवत के दशम स्कंध में वर्णन आया है—'एक दिन वे जलाशय के पास पहुंचे—वहां उन ग्वाल-बालों ने मुख फैलाए हुए एक पक्षी को देखा। इतने में ही श्री कृष्ण के पास आकर वह शीघ्रता-पूर्वक चोंच उठाकर भगवान् को निगल गया—श्री कृष्ण को बका-सुर से निगला जानकर सब ग्वाल-बाल रो-रोकर विलाप करने लगे – ग्वाल-बालों को विकल जानकर श्री कृष्ण ने अपने को अंगारे

वे खेलने लगे। गेंद थी उनके पास। गेंदमार खेल आरंभ किया था उन्होंने। एक-दूसरे को मारते, बचते, ठहाके लगाते ! जिसे गेंद लग जाती वह खेल से हटकर एक ओर खड़ा कर दिया जाता। सैनिकों ने देखा था कि सबने चपल कान्हा ही था जिसे गेंद नहीं लग पा रही थी। लगा था कि छोटा होने का खेल में भी बहुत लाभ मिल रहा है उसे। जिस क्षण मन खेल से जुड़ जाता, हृदय की गति सहज हो जाती, किन्तु जब-जब स्मरण आता कि कुछ ही पलों में वह बालक एक असुर के हाथों हत होने वाला है, तब-तब हृदय-गति बढ़ जाती ! इसी तरह दोपहर बीतने लगी थी।

गोप बालक अब खेलते-खेलते थक गए थे। एक ओर वे जहां-तहां

के समान जलाया, तब उसने श्री कृष्ण को तुरंत उगल दिया और क्रोध करके चोंच से श्री कृष्ण को मारने के लिए दौड़ा—तब श्री कृष्ण ने उसकी चोंच के दोनों भागों को दोनों हाथों से पकड़कर तृण के समान चीर डाला !'

दशम स्कंध में ही बकासुर को असुर भी कहा गया है, दैत्य भी। इस संदर्भ में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि मथुरा के म्यूजियम में (मथुरा के आसपास की गई खुदाई से जो अवशेष मिले हैं, उनमें) पर्शियन सैनिक और नागरिकों की भी मूर्तियां हैं। द एजुकेशनल बुक कम्पनी आफ लंदन द्वारा प्रकाशित एनसाइक्लोपीडिया के चौथे भाग में कहा है कि—'भारतीय सभ्यता सम्भवतः मिस्री, सीरियन और चीनी सभ्यता से भी पुरानी है।' इसी एनसाइक्लोपीडिया के अन्य भागों में तत्कालीन भारतीय सभ्यता के व्यापारिक सम्बंध फिनीशियन, पर्शियन, असीरियन, बेबीलोनियन और अन्य सभ्यताओं से होना भी स्वीकारा गया है।

संभवतः दैत्य, राक्षस, असुर और दानव आदि से सम्बोधित ये विदेशी व्यापारी और सैनिक ही थे जो भारत में जहां-तहां बिखरे हुए थे। इन्हीं के माध्यम से कंस ने कृष्ण का वध करवाने की चेष्टाएं कीं। बकासुर, वत्सासुर, (बकअसुर) उन्हीं में से रहे होंगे।

शरद जोशी

बिखरकर बैठ गये। ऐसे जैसे सुस्ता रहे हों। केवल कान्हा ही चपलता के साथ कभी इधर और कभी उधर दौड़ता नजर आ रहा था।

उसी क्षण वह दृश्य आया, जिसकी प्रतीक्षा संभवतः सैनिकों को भी थी, और बकासुर को भी।

गोप बालक बातें कर रहे थे। उद्धव, बलराम, मनसुखा, अनेक… सहसा गठीले बदन के बलराम चिल्लाए थे, "ऐ कान्हा ! उस ओर नहीं ! जलाशय बहुत गहरा है ! दूर रह उससे !"

पर सैनिकों ने देखा कि बालक ने कुछ सुना ही नहीं। यदि सुना भी तो बाल बुद्धि से अनसुना करता हुआ, उसी ओर बढ़ने लगा जिस ओर बकासुर छिपा बैठा था। जल में डुबकी मारकर कुछ ही क्षण पहले समा गया था वह जलाशय के भीतर।

"कान्हा !" कुछ गोप बालक डरकर चीखे। फिर सभी उठे और जलाशय की ओर दौड़ पड़े। पुकार सुन-समझ पाने के पहले ही सैनिकों ने जलाशय की ओर बढ़ा हुआ कन्हैया का छोटा-सा पैर देखा, फिर अगले ही क्षण जल में हलचली हुई। बकासुर का नुकीला मुंह बाहर निकला।[1] लगा कि उसने किसी मगर की तरह पंजे भी उछाले हैं। और बालक कन्हैया घुप्प जल के भीतर गायब हो गया !

सैनिकों को लगा था कि हृदयगति इतनी तीव्र हो गई है, जिसे थामना असंभव है ! जो देखा, उसके अनुसार तो लगता था कि कन्हैया समाप्त हुआ ! मन घृणा से भी भर उठा था उनका। धिक्कार ! ऐसे नन्हे बालक को शत्रुभाव रखकर इस निर्दयतापूर्वक हत करवाना ! छिः !

जल में हलकी हलचल अब भी हो रही थी। लगता था कि बालक

---

१ बकासुर वध का जो वर्णन श्रीमद्भागवत में आया है, वह प्रतीकात्मक है। संभवत. बक-वत्‌रूप वाला यह असुर श्री कृष्ण को जलाशय में खींच ले गया और बलपूर्वक उससे छूटकर श्री कृष्ण तट तक आये। तटक्षेत्र पर हिंस्र असुर ने उन्हें पुन. हत करने की चेष्टा की और श्री कृष्ण ने उसके मुंह के जबड़ों को पकड़कर अद्भुत शक्ति से उसे चीर डाला !

विशालदेह असुर की घिनौनी चेष्टा था। जबरदस्त प्रतिकार कर रहा है। एक तरह से बराबर की शक्ति के साथ मुकाबला भी। किन्तु अगले ही क्षण जल की सतह एकदम शान्त हो गई ! संभवतः वह तल में पहुंच चुका था। सब समाप्त ! महाराज कंस का जीवन सुरक्षित हुआ !

किन्तु बकासुर कहां है ? चकित होकर जलाशय की सतह पर दूर-दूर तक दृष्टि बिखरा दी थी सैनिकों ने। क्या वह भी बालक ने अपने साथ ही समाधिस्थ कर लिया ? डर बिखरने लगा था मन में ! कहा वह नन्हा बालक और कहां वज्र बकासुर ! जल की सतह शान्त थी।

□□

गोप बालकों में खलबली मच चुकी थी ! 'कान्हा ! कन्हैया ! गोपाल !' वे चीख रहे थे। सभी के चेहरों पर हवाइयां उड़ी हुईं। सभी भयातुर एक-दूसरे को देखते हुए। पागलों की तरह दृष्टि से जलाशय की शान्त सतह खखोलते हुए ! कान्हा दूर-दूर तक नहीं दीख रहा था। सब जानते थे कि न कन्हैया को जल में तैरना आता है न ही कभी जल के बीच उतरा है वह ? निश्चय ही उसे कुछ हो गया था !

कुछ रुआंसे हुए और कुछ रो ही पड़े ! कुछ आकुल स्वर में पुकारने लगे थे—"तुम कहां हो कृष्ण ? बाहर आओ !"

सैनिकों की दृष्टि जल पर ठहरी हुई थी। सहसा जल-क्षेत्र में तट की ओर फिर उथल-पुथल होने लगी। अगले ही क्षण नन्हा कान्हा तल से किसी मछली की तरह उछलकर बाहर निकल आया !

सैनिक भयभीत हो गए ! हे ईश्वर ! इसे तो कुछ हुआ ही नहीं है ! ऐसी अद्भुत स्फूर्ति !

अधिक सोचने-देखने से पहले ही किसी चमत्कार की तरह घोर गर्जना करता हुआ विशालाकार दैत्य बकासुर जलाशय से बाहर आया और तट क्षेत्र की ओर लपका। गोप बालक हड़बड़ी में गिरते-पड़ते पीछे हटे ! कैसा अद्भुत था वह दृश्य ! लगता था कि एक पहाड़ बढ़ा जा रहा है बालक की ओर ! जल उसके बदन से रिस रहा था। जल के साथ-साथ अनेक जगह से लहू भी।

तो क्या बालक ने ही बकासुर को चोट पहुंचा दी। वह भी जल के भीतर? किन्तु अधिक सोचने-समझने का समय ही नहीं मिल सका था उन्हें ! एक और चमत्कार देखा था उन्होंने ! बालक उछलकर दैत्य के कन्धों पर सवार हो गया था ! वह झूमा-झटकी करता हुआ उसे दूर उछाल देने को पागल और बालक ने चकवत् चौड़े मुह को अपने नन्हे हाथों में थामकर उसे फाड़ना शुरू कर दिया !

भयातुर आंखें फटी रह गई थी सैनिकों की। ऐसे जैसे प्रतिपल चमत्कार को चरम तक देख रहे हो ! सब इतने स्तब्ध हो रहे थे कि सोचने-समझने का अवसर भी नही मिला। जब तक सोच-समझ पाते, तब तक धरती पर गिरकर बकासुर जोरों से छटपटाने लगा था। वह छटपटाहट भी अधिक देर नही चली थी। बालक ने जबड़ों के मुहानों पर कसे अपने पंजों मे आश्चर्यजनक हरकत पैदा की और सभी को लगा कि किसी विशाल वृक्ष को आरे ने चीर डाला है।

बालक ने बकासुर को बीचोबीच से चीर दिया था ! बहुत भयावह और वीभत्स दृश्य था वह ! रक्त से धरती रंग गई थी। दैत्य के शरीर पर तनिक देर हलचल हुई, फिर वह शान्त हो गया !

सैनिकों ने देखा कि बालक ने दोनों हाथ इस तरह पोंछे जैसे माटी से सन गए हों, फिर आराम के साथ जलाशय के किनारे पहुंचकर हाथ धोने लगा !

□□

लगा था कि विश्वास न करें ! जो आंखें देख रही हैं उसको अस्वीकार दें ! अस्वीकारने के अनेक तर्क भी थे ! वह दैत्य और छोटा-सा बालक ! असंभव !

किन्तु उस असंभव को संभव होते देखा था उन्होंने ! एक स्वप्न की तरह ! और सत्य—सामने पड़ी बकासुर की क्षतविक्षत देह !

रोमांच के कारण कुछ पलों तक जीवन्तता का अहसास ही नहीं हुआ। जब हुआ, तब तक गोप बालक नन्हे कान्हा को कन्धों पर उठाए जय-जयकार करते हुए बस्ती की ओर बढ़ चुके थे !

कांपते, थरथराते, सहमते सैनिक देर बाद उठ सके। लगता था कि शरीर उनके भी निर्जीव हो गए हैं ! निःसन्देह सत्य सुना था उन्होंने। वह बालक मनुष्य नहीं है !

तब क्या है ? पहले ने दूसरे की ओर देखा था। पसीने से लथपथ हो चुके थे चेहरे ! देवता ! नहीं—ईश्वर ! जो, जितना और जैसा देखा था उन्होंने वह निश्चय ही मनुष्य-कर्म नहीं था ! अतिमानवीय !

भूख-प्यास सब कुछ भूल-भालकर पागलों की तरह दौड़ पड़े थे मथुरा की ओर। अर्धरात्रि नगर में पहुंचकर सेनापति और महामंत्री को सूचना दी थी। भोर हुए ही दोनों सैनिक पुनः कंस के सामने लाए गए !

समझ लिया था प्राप्ति ने —वे क्या कहेंगे ? बोलने से पहले ही उनके चेहरों, भयभीत आंखों और थरथराते पैरों ने सब कुछ जतला दिया था। सब अनकहा, कहा हुआ !

सेनापति ने संक्षेप में सारी कहानी कह सुनाई थी। कंस सुनते रहे। महारानियां आसपास बैठी रहीं। प्राप्ति पल-पल पति के चेहरे पर आती व्यग्रता और क्रोध को पढ़ती हुई। कितना अच्छा हो कि महाराज कंस अब भी अपनी षड्यंत्र-रचनाओं से मन को मुक्त कर सकें ?

सब सुनने के बाद कंस ने कहा था, "तो अतिमानव है वह !" सहसा वह हंस पड़े थे, "आश्चर्य ! एक बालक और अतिमानव ! निश्चय ही किसी माया शक्ति को ईश्वर निरूपित करने की दुश्चेष्टा की जा रही है !" उन्होंने सेनापति को आदेश दिया था, "इन सैनिकों को विदा करें !

सैनिक जिस तरह थर्राते-सहमते आए थे, उसी तरह लौट गए। राजा ने पल-भर चुप रहने के बाद कहा था, "मुझे लगता है केशी ! बालक की ओट में जनपद के भीतर अवश्य ही हमारे विरुद्ध कोई षड्यंत्र पनप रहा है ! इसका नाश किए बिना हम सहज नहीं हो सकेंगे !"

केशी ने महामंत्री को देखा। वह चुप थे। चिन्तित भी। प्राप्ति को

लगा कि वृद्ध प्रद्युम्न का कुम्हलाया चेहरा उनके टूटते साहस को जतला रहा है। किन्तु केशी ?—पूर्ववत् घृणा और आक्रोश से भरा चेहरा! असफलता ने अधिक ही उत्तेजित और अशांत कर दिया था उसे। यह उत्तेजना और अशान्ति यादवपति के स्वभाव से मेल खाती हैं। लगता है कि अग्नि में घृतवत् केशी की यह दृष्टि, कार्य कर रही है। प्राप्ति के भीतर कुछ पसीजने लगा था। क्या है यह ? क्या प्राप्ति भयभीत है ? या बालक को लेकर वह भी साधारण व्यक्तियों की तरह यह मानने तैयार हो गई है कि वह अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न मायाधारी है ? या उसे अपने-आप पर ही विश्वास नहीं रहा है ?

निश्चित नहीं कि क्या था वह ? कम-से-कम उस समय, उस क्षण प्राप्ति की समक्ष नहीं आया था कि वह क्या है ? और जब आया, तब तक बहुत देर हो चुकी है ! सब नष्ट हो चुका है ! महाराज कंस स्वप्नवत् हो गए हैं ! केवल विचार-शेष ! इस विचार से जुड़ा रह गया है मात्र पछतावा !

यह पछतावा स्मरण दिलाता है, प्रतिपल दिलाता रहा है ! चीखते हुए नींद तोड़ देता है प्राप्ति की। लगता है कि सन्नाटे के किसी पल को चीरता हुआ यही पछतावा स्वर बनकर प्रश्न उछालने लगता है—कितना अच्छा होता, प्राप्ति ! तू उसी क्षण महाराज कंस की दुर्गति पर अंकुश लगा सकी होती ! किसी तरह—उन्हें रोक सकी होती ! किसी भी कीमत पर उन्हें उन दुश्चेष्टाओं से हटा सकी होती जो अपरोक्ष रूप से उनकी मृत्यु का कारण बना ! रूठकर, रुष्ट होकर ही सही, किन्तु उन्हें रोकती। किन्तु क्या वे चेष्टाएं ही महाराज के वध का कारण थीं ? प्राप्ति अनायास ही स्वयं से प्रश्न कर उठती है ? केवल उस बालक के वध की चेष्टाएं ?

संभवतः नहीं ! बालक के वध की नहीं, निरंतर अनियंत्रित शक्ति प्रदर्शन की चेष्टाएं कंश-वध का कारण हुई ! एक नहीं अनेक चेष्टाएं !

□□

शक्ति और सामर्थ्य के थोथे दंभ में उन्मत्त मथुराधिपति युवराज-

काल से ही ऐसी चेष्टाएं करते रहे थे, जिन्होने अपरोक्ष रूप से मथुरा-वासियो-भर के भीतर ही नही, समूचे शूरसेन जनपद मे उनके विरुद्ध वातावरण बना दिया था !

इस विचार के साथ ही प्राप्ति को लगता है कि किसी-न-किसी रूप में उसके वैधव्य का कारण उसके शक्ति-लोलुप पिता भी है ! महाशक्तिमान सम्राट् जरासन्ध ! वह, जिनके मांस-मज्जा से उनका शरीर बना है, वही तो हैं, जिन्होने विभिन्न राज्यों, सत्ताओ को अधीनस्थ करने के लिए कूटनीति का वह घृणित जाल बिखराया था ? वही तो है, जिन्होने कंस जैसे सत्तालोलुपों की वृत्ति का लाभ उठाकर उन्हे मृत्युमुख मे धकेला ? स्मरण आता है कि महाराज कस से विवाह करने के लिए अपनी बेटियो को प्रस्तुत करते हुए जरासन्ध ने कहा था—"यह राजपुत्रियो का नही, राजनीति का सम्बन्ध है ! दो महाशक्तियो का सम्बन्ध है ! इससे मगध की महाशक्ति अधिक बलशाली होगी ! कुरुवंशी भीष्म की शक्ति के लिए चुनौती !"

प्राप्ति स्मरण-भर से आवेश मे सुलगने लगी है ! सम्बन्ध ! लगता है कि उसके अपने भीतर से विरक्ति और घृणा का एक समुद्र उफनने लगा है। यह समुद्र पिता को ही निगल जाना चाहता है ! सत्तालोलुपता और शक्तिप्राप्ति की ज्वाला मे सम्पूर्ण जीवन स्वय सुलगते और परिजनो, परिचितो को सुलगाते रहे महाराज जरासन्ध ही अपने जामाता-वध के दोषी हैं ! घोर घृणा से मन भर आया है।

किन्तु कर क्या सकती है प्राप्ति ? क्या कर पाना उसके वश में है ? दुर्जेय जरासन्ध से विद्रोह करेगी प्राप्ति ! उनके विचारों का निषेध करने की दुश्चेष्टा करेगी वह ? असभव ! रुक जाती है इस विचार से। अनुशासन, पितृ के प्रति पुत्री धर्म और व्यवस्था ने उसे वह सारे अधिकार नही दिए ! उसका अधिकार है मात्र चुपचाप सुलगते रहना ! नियति-चक्र में चलते घिनौने राजतंत्रों की राजनीति को दर्शक भाव से देखते रहना !

मथुरा में भी तो यही कुछ करती रही प्राप्ति ! इससे अधिक करने का न तो समाज ने उसे अधिकार दिया था, न ही पत्नी धर्म ने स्वतंत्रता ! पुरुष-शक्ति के सामने उसकी इसके अतिरिक्त नियति ही क्या है ? लगा

था कि मन के भीतर से कोई विद्रोही स्वर, धीमे ही सही, किन्तु विरोध में उठा है। उसके अपने विचार को नकारता हुआ! उसकी अपनी निराशा को धिक्कारता हुआ! नहीं! बहुत कुछ है प्राप्ति के वश में! निषेध है उसके वश में। वह चाहे तो कर सकती है! किन्तु प्राप्ति के भीतर ही एक सरकारित, विशिष्ट ढंग से संस्कारों की आग में पकाई गई एक ऐसी राजसुता भी है जो यह सब नहीं कर सकती! करेगी भी नहीं!

प्राप्ति को यह विचार करने से पूर्व यह स्मरण रखना होगा कि वह केवल नारी नहीं—राजपुत्री है! और राजपरिवारों, कुलीन घरों में जनमने वाली केवल नारियां नहीं होतीं—वे राजकन्याएं होती हैं, राजनीति और राजधर्म के प्रति समर्पण उनकी नियति होता है। कुल-नीति के अनुसार चलना उनका भाग्य!

किन्तु नीति? उसके अनुचित-उचित ठहराने या उसे लेकर निर्णय करने का अधिकार भी राजकन्या को नहीं। उनका अधिकार होता है राजपुरुषों को! गुरुओं, ब्राह्मणों और मंत्रियों को! ऐसा न होता तो प्राप्ति ने उसी क्षण अपना विद्रोह क्यों न मुखर किया होता, जिस क्षण मथुराधिपति कंस से सम्बन्ध जोड़ते हुए जरासन्ध ने उसे स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध नहीं, राजनीति का सम्बन्ध बताया था?

तब प्राप्ति नहीं बोली थी! प्राप्ति उस समय भी नहीं बोली, जब महाराज कंस राजनीति के नाम पर केवल अत्याचार करते गए थे! न निषेध किया था उसने, न अस्वीकार किया। तब अभी ही क्यों अस्वीकार कर सकती है उस व्यवस्था को?

कितने अवसर नहीं आए थे, जब प्राप्ति चाहती तो निषेध कर सकती थी? पिता का नहीं तो पति की अत्याचारी गतिविधियों का ही करती! किन्तु कुछ नहीं किया उसने। उलटे एक तरह से समर्पण किया था! समर्पण करती चली गई थी।

और कंस थे कि निरंतर षड्यन्त्रों का क्रम जुटाते हुए। अनचाहे ही प्राप्ति विगत से पुनः जुड़ने लगती है! कितना मन होता है कि उस सबको अस्वीकार दे! कितना चाहती है कि नकार दे विगत को! पर क्या कोई अपने-आप को नकार सका है? प्राप्ति भी नहीं नकार सकेगी। इस सुन्दर

वैभवशाली राजनिवास में वैधव्य के कोहरे से ढकी शृंगारहीन प्राप्ति प्रतिपल अपने विगत से जुड़ी रहेगी। उसका स्मरण ही उसका प्रायश्चित्त होगा ! और यह प्रायश्चित्त-स्मरण एक लम्बी कथा।

सोचते-सोचते थक गई है प्राप्ति ! मथुरा पर गदा-प्रहार की तैयारियां चल रही है। और प्राप्ति है कि दिन के हर पल यह गदा-प्रहार अपने आत्म पर सहती है ! विगत के कटु-स्मरणों का गदा-प्रहार ! रात ढलती है और लगता है कि मन मुक्त हुआ, पर भोर के साथ पुनः वही झेलने का क्रम !

प्राप्ति ने बहुत सोचा है। लगा है कि विगत को विस्मृत करने में ही सुख मिलेगा, किन्तु तुरन्त ही मन कहता है— नहीं प्राप्ति, विगत स्मरण तुम्हारा प्रायश्चित्त है ! संभवतः वह भी तुम्हारी नियति !

यह नियति मनुष्य मात्र की है ! इस नियति से न तो राजपुत्रियां मुक्त हैं न जन-पुत्रियां। यही नियति सत्यासत्य का अन्वेषण है ! और प्राप्ति सत्य खोज रही है। अपने-आप को लहू-लुहान कर लेने की शर्त पर ही सही, किन्तु खोज रही है।

□□

शरद जोशी

सरस्वती सीरीज

सुनील गावस्कर : मेरे प्रिय खिलाड़ी १०/-
इंदिरा गांधी : जीवनी और शहादत १०/-

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

देवदास १०/-
मंझली दीदी १०/-
काशीनाथ १०/-
दत्ता १०/-
गृहदाह १०/-

आचार्य चतुरसेन

वयं रक्षाम: १०/-
गोली १०/-
सोना और खून-१ १०/-
सोना और खून-२ १०/-
सोना और खून-३ १०/-
सोना और खून-४ १०/-
वैशाली की नगरवधू १०/-
सोमनाथ १०/-

शिवानी

सुरंगमा १०/-
विवर्त्त १०/-

कोरे कागज — अमृता प्रीतम

१०/-

एचादर मली-सी — राजेन्द्रसिंह बेदी

१०/-

चिन्ता छोड़ो : आगे बढ़ो — जेम्स ऐलन

जैसा चाहो वैसा बनो

१०/-

१०/-

प्रेरक प्रसंग — सत्यकाम विद्यालंकार

पचतंत्र

१०/-

१०/-

शे'र-ओ-शायरी — सं० प्रकाश पंडित

उर्दू शायरी के नये अंदाज

१०/-

१०/-

कलर फोटोग्राफी — ओ० पी० शर्मा

१०/-

सामान्य रोगों की सरल चिकित्सा — डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

१०/-

भारत के क्रान्तिकारी — मन्मथनाथ गुप्त

१०/-

वैज्ञानिक योगासन — डॉ० सत्यपाल

१०/-

शरद जोशी

अरुणा सेठ	
स्वादिष्ट भोजन कला	१०/-
जसलीन दुग्गल	
भारतीय व्यंजन	१०/-
मानस हंस	
अनमोल मोती	१०/-
स्वेट मार्डेन	
प्रभावशाली व्यक्तित्व	१०/-
निराशा से बचिए	१०/-
डॉ० शुकदेवप्रसाद सिंह	
ठीक खाओ स्वस्थ रहो	१०/-
प्रकाश दीक्षित	
हस्त रेखाएं	१०/-
गोपीनारायण मिश्र	
भारतीय ज्योतिष	१०/-

शरद जोशी

रामकुमार भ्रमर
कृत
श्रीकृष्ण-कथा पर आधारित
उपन्यास-माला

- कालचक्र - १
- कारावास - २
- कालिन्दी के किनारे - ३
- कर्मयज्ञ - ४
- कालयवन - ५
- जनाधार - ६
- जनपथ पर - ७
- जलयात्रा - ८
- जन-जन हिताय - ९
- जय - १०

महाभारत पर आधारित
उपन्यास-माला

- आरंभ - १
- अंकुर - २
- आवाहन - ३
- अधिकार - ४
- अग्रज - ५
- आहुति - ६
- असाध्य - ७
- असीम - ८
- अनुगत - ९
- १८ दिन - १०
- अन्त - ११
- अनन्त - १२